सिद्धान्तप्रकाशिका

सर्वात्मशम्भुना विरचिता

भाषानुवाद-टिप्पणीसहिता

सम्पादकः

राष्ट्रियपण्डितः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः



प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी - २२१ ००१

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला — ९

सिद्धान्तप्रकाशिका

सर्वात्मशम्भुना विरचिता

भाषानुवाद-टिप्पणीसहिता

सम्पादकः

राष्ट्रियपण्डितः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी - २२१ ००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथमं संस्करणम् १९९६

मूल्यम् : सजिल्द १००/-
अजिल्द ७५/-

अक्षर-संयोजन
शिव-शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी

मुद्रक
जौहरी प्रिंटर्स
शिवाजी नगर, महमूरगंज, वाराणसी

Research Publications Series — 9

SIDDHĀṄTAPRAKĀŚIKĀ

OF

SARVĀTMAŚAṀBHU

Translation with Notes

Edited by
Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

First published 1996

Price : Rs. 100 (Hb)
Rs. 75 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Printed at :
Jauhari Printers
Mahmoorganj, Varanasi - 221 001

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां



श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां

श्री १००८ जगद्गुरु-डॉ०चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां

शुभाशीर्वचनम्

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के अधीन कार्यरत शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा श्रीमहाशिवरात्रि के पावन पर्वकाल में प्रकाशित अन्य अनेक ग्रन्थों के साथ इस संस्थान के निदेशक राष्ट्रियपंडित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदीजी के द्वारा संपादित 'सिद्धान्तप्रकाशिका' नामक ग्रन्थ को शिवार्पित करते हुए हम अपार आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

श्री सर्वात्मशंभु इस ग्रन्थ के रचयिता हैं। संपादक के विचार से सर्वात्मशिव और सर्वात्मशंभु में कोई भेद नहीं है। दोनों नाम एक ही आचार्य के हैं। आप अघोर-शिव के गुरु थे। आपके द्वारा लिखित यह सिद्धान्तप्रकाशिका सिद्धान्त शैवमत का परिचायक है। इस छोटे-से ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने सिद्धान्त शैवमत संमत ३६ तत्त्वों के बारे में, भारतीय वाङ्मय के आगम-संमत विभाग के बारे में तथा सिद्धान्त शैवागम प्रतिपादित दीक्षा जैसे विषयों के बारे में बहुत सुंदर ढंग से विवेचन किया है। ग्रन्थस्थ विषयों का समीक्षात्मक विवेचन संपादक ने अपनी प्रस्तावना में विस्तार से किया है। अभ्यासक एवं चिकित्सकों को उसका सावधानी से अध्ययन करना चाहिये।

इसके सम्पादन के लिये पांडिचेरी के फ्रेंच इंस्टीट्यूट से प्राप्त तीन पांडुलिपियों की सहायता ली गयी है। हमारे शोध संस्थान के उद्देश्यों के अनुसार मूल ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद तथा उपयुक्त टिप्पणियों के साथ संपादन होने से यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

संपादक महोदय ने इस ग्रन्थ के अन्त में मधुसूदन सरस्वती द्वारा विरचित प्रस्थानभेद नामक छोटे-से ग्रन्थ को भी जोड़ दिया है। अभ्यासकों को इससे निगम-संमत भारतीय वाङ्मय का भी विस्तार से परिचय मिल सकेगा।

वृद्धावस्था में भी अत्यन्त सावधानी से कार्य करने की श्री द्विवेदीजी की शैली अनुकरणीय है। इनके द्वारा आगमिक साहित्य समृद्ध हो रहा है, यह एक गौरव का विषय है। हम भगवान् विश्वेश्वर तथा श्री जगद्गुरु विश्वाराध्यजी से यही प्रार्थना करते हैं कि आपकी आयुरारोग्य की वृद्धि हो तथा आपके द्वारा निरन्तर साहित्यसेवा होती रहे। इन्हीं मंगल-कामनाओं के साथ हम अपना आशीर्वचन पूर्ण करते हैं।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

इति शिवं भूयात्।



प्रस्तावना

शतरत्नसंग्रह के लेखक उमापति शिवाचार्य का समय उस ग्रन्थ के सम्पादक के अनुसार तेरहवीं शताब्दी का अन्तिम तथा चौदहवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल है। उमापति शिवाचार्य ने अपने इस ग्रन्थ (पृ. ८-९) में कामिकागम और सोमसिद्धान्त के वचनों को उद्धृत कर लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, आतिमार्गिक और मान्त्रिक भेद से शास्त्रों के पाँच-पाँच भेद बताकर पुन: प्रत्येक के [१]पाँच-पाँच भेदों का उल्लेख कर लिखा है कि इन सबका परिचय सर्वात्मशंभुकृत सिद्धान्तदीपिका में दिया गया है।

अभी पांडिचेरी स्थित फ्रेंच शोध संस्थान से तीन खण्डों में वहाँ संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण प्रकाशित हुआ है। वहाँ सर्वात्मशंभु और त्रिलोचन शिवाचार्य के ग्रन्थों का परिचय देखने को मिला। सर्वात्मशंभु के ग्रन्थ सिद्धान्तप्रकाशिका के विवरण को देखने से ऐसा लगा कि यह ग्रन्थ उमापति शिवाचार्य द्वारा उद्धृत सर्वात्मशंभु के ग्रन्थ सिद्धान्तदीपिका से अभिन्न है। अपनी अध्ययन-यात्रा के प्रसंग में शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी की परामर्शदात्री समिति की सदस्या डॉ० रमा घोष पांडिचेरी जानेवाली थीं। उनको मैंने यह भार सौंपा कि वे इस ग्रन्थ को देखें और वह किस तरह से मिल सकता है, इसकी जानकारी लें। परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ की तीन प्रतिलिपियाँ हमें प्राप्त हुईं। इनको देखने से यह निश्चय हो गया कि यह उमापति शिवाचार्य द्वारा उद्धृत ग्रन्थ ही है। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि इसमें लौकिक आदि पाँच विभागों का तो विवरण है, किन्तु उनमें से प्रत्येक के पाँच-पाँच उपविभागों के स्थान पर यहाँ दो या तीन उपविभागों का ही परिचय दिया गया है।

---

१. "लौकिकवैदिकाध्यात्मिकातिमार्गिकमान्त्रिकभेदेन सदाशिवस्य प्रतिमुखं पञ्चविधभिन्नानि पञ्चविंशतिस्रोतांसि भवन्ति ···तथा कामिके — ···"पञ्चविंशतिभेदेन स्रोतोभेद: प्रकीर्तित:" (पृ.८)। स्वच्छन्दतन्त्र (११.४३-४५) में केवल पाँच मुख्य भेद ही गिनाये गये हैं। टीकाकार क्षेमराज का उपविभागों का विवरण भिन्न प्रकार का है।

त्रिलोचन शिवाचार्य की सिद्धान्तसारावलि के भी कुछ वचन उमापति शिवाचार्य के उक्त ग्रन्थ में ही उद्धृत हैं। कन्नड़ लिपि में सन् १९३० में मुद्रित मूल ग्रन्थ और उसके कन्नड़ अनुवाद की एक प्रति हमें वाराणसी के जंगमवाड़ी मठ में मिली। बाद में इसके सन् १९०१ में मुद्रित अन्य संस्करण की तथा गवर्नमेन्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी बुलेटिन, मद्रास के भाग १७-२० में अनन्तशंभु की टीका के साथ मुद्रित ग्रन्थ की भी सूचना मिली। मैसूर संस्करण के बारे में सूचना दी गई थी कि इसमें चर्यापाद नहीं है, किन्तु यह सूचना सही नहीं थी। त्रिलोचन शिवाचार्य के विषय में सूचना मिलती है कि [२]राजेन्द्र चोल प्रथम (१०१२-४२ ई०) तीर्थयात्रा के प्रसंग में उत्तर भारत आये थे। तब लौटते समय अपने साथ वे शैवाचार्यों को भी ले गये। सिद्धान्तसारावलि में तो इसका कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु अनन्तशंभु की टीका में ये वचन उपलब्ध हैं। [३]मूल लेखक ने टीका का ही उल्लेख किया भी है।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के उद्देश्यों में वीरशैव मत के साथ पाशुपत, सिद्धान्तशैव और काश्मीरशैव के साहित्य का प्रकाशन भी समाविष्ट है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये शैवसिद्धान्त का संक्षिप्त अथ च परिपूर्ण परिचय देनेवाले इन दोनों ग्रन्थों को शैवभारती ग्रन्थमाला में प्रकाशन के लिये स्वीकृत कर लिया गया। इनमें से प्रथमतः यहाँ सर्वात्मशंभु की सिद्धान्तप्रकाशिका को प्रकाशित किया जा रहा है।

यह एक छोटा-सा ग्रन्थ है। इसके हम तीन विभाग कर सकते हैं। पहले विभाग में हमें सिद्धान्तशैव-संमत ३६ तत्त्वों का विवरण मिलता है। दूसरे विभाग में पूरे भारतीय वाङ्मय को पाँच विभागों में बाँटकर उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है और अन्तिम भाग मे सिद्धान्तशैवागम-प्रतिपादित दीक्षा आदि विषय समाविष्ट हैं। अद्वैतसिद्धि आदि महनीय ग्रन्थों के रचयिता महान् वेदान्ती और भक्त मधुसूदन सरस्वती ने 'प्रस्थानभेद' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ लिखा है। यह आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि, पूना से प्रकाशित सर्वदर्शनसंग्रह के अन्त में प्रकाशित हो चुका है। यहाँ भी शास्त्रों का संक्षिप्त परिचय देकर अन्त में वेदान्त की श्रेष्ठता

---

२. देखिये — "हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया", पृ. ३८, टि. २

३. उक्त ग्रन्थ के उक्त स्थल पर उद्धृत श्री वी० वेंकटय्या का निबन्ध (पृ. १७६) देखिये। मद्रास से प्रकाशित उक्त ग्रन्थ की अनन्तशंभुकृत टीका (पृ. ११९) में ये श्लोक मिलते हैं।

प्रतिपादित है। यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में आगमशास्त्र का और प्रस्थानभेद में निगमशास्त्र का विशेष परिचय दिया गया है। इन दोनों ग्रन्थों में मिलकर भारतीय वाङ्मय का समग्र परिचय मिल जाता है। अत: प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ प्रस्थानभेद को भी परिशिष्ट के रूप में यहाँ पुन: प्रकाशित किया जा रहा है।

पांडिचेरी के फ्रेंच इंस्टीट्यूट में संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची के सन् १९८७ में प्रकाशित दूसरे भाग (पृ. १६३-१६४) में सिद्धान्तप्रकाशिका नामक सर्वात्मशंभुरचित ग्रन्थ का विवरण १६९ संख्या में दिया गया है। यहाँ पांडिचेरी में स्थित तालपत्र मातृका के अतिरिक्त तिरुपति (टी.२५१), अड्यार (टी.४१४) और मद्रास (टी.४३३) के पुस्तकालयों से प्राप्त प्रतिलिपियों का भी परिचय दिया गया है। वहीं यह भी बताया गया है कि शैवसिद्धान्तदीपिका के नाम से भी यह प्रसिद्ध है। यह हम पहले लिख चुके हैं कि उमापति शिवाचार्य ने सिद्धान्तदीपिका के नाम से इसे उद्धृत किया है। हमें तालपत्र मातृका को छोड़कर अन्य तीन पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपि पांडिचेरी के फ्रेंच इंस्टीट्यूट की ग्रन्थाध्यक्ष सुश्री अनुरूपा नायक की कृपा से प्राप्त हुई। इन्हीं तीन प्रतिलिपियों की सहायता से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। तालपत्र प्रति के अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण होने से उसकी प्रतिलिपि हमें प्राप्त नहीं हो सकी।

ग्रन्थकार सर्वात्मशंभु के अन्य किसी ग्रन्थ की हमें अब तक कोई जानकारी नहीं मिल सकी है। न्यू कैटलाग्स कैटलागरम् के भाग १, पृष्ठ ५८-५९ पर इतनी सूचना मिलती है कि सर्वात्मशिव अघोरशिव के प्रधान गुरु थे। अघोरशिव ने क्रियाक्रमद्योतिका नामक ग्रन्थ की रचना १०८० शकसंवत् (११५७ ई०) में की थी। त्रिलोचन शिवाचार्य के प्रायश्चित्तसमुच्चय के अनुसार अघोरशिव [४]आमर्दक

४. "त्र्यम्बकामर्दकाभिख्यश्रीनाथा अद्वये द्वये। द्वयाद्वये च निपुणा: क्रमेण शिवशासने।।" (३६.१२) तन्त्रालोक के इस वचन के अनुसार द्वैत शैवागमों का प्रसार आमर्दक मठ से हुआ, ऐसा माना जा सकता है। म०म० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार आमर्दक मठ की स्थिति मध्यप्रदेश में ग्वालियर के आसपास कहीं रही है। म० म० वा० वि० मिराशी उज्जैन के रूप में इसे पहचानते हैं। त्रिलोचनशिव की सिद्धान्तसारावलि के टीकाकार (पृ.११८-११९) आमर्दक मठ से विनिर्गत रणभद्र, गोलकी और पुष्पगिरि मठों का उल्लेख करते हैं। उनके द्वारा उद्धृत प्रमाण के अनुसार आमर्दक मठ की स्थापना दुर्वासा मुनि ने की और उनकी शिष्य-परम्परा में कौशिक, काश्यप आदि ऋषियों के भी नाम हैं। इनको यहाँ आदिशैव कहा गया है। हम जानते हैं कि आदिशैवों के प्रसंग में इन ऋषियों के नाम चन्द्रज्ञान (क्रि० १०.६-७) आदि वीरशैवागमों में भी मिलते हैं और शिवदृष्टिकार सोमानन्द (७.११०) भी दुर्वासा से ही अपने सम्प्रदाय की प्रवृत्ति मानते हैं।

मठ के अधिपति थे। न्यू०कैट० के भा.३, पृ.१४६ पर यह सूचना भी अंकित है कि त्रिलोचनशिव ने अपने प्रायश्चित्तसमुच्चय में सर्वात्मशिव को स्मरण किया है। यहाँ हम सर्वात्मशिव को प्रस्तुत ग्रन्थकार सर्वात्मशंभु से अभिन्न मान सकते हैं, क्योंकि अनेक शैवाचार्यों के नामों में हम देखते हैं कि एक ही आचार्य के लिये उनके विशेष नाम के साथ शिव और शंभु पदों का यथेच्छ विनियोग किया जाता है। इसकी पुष्टि के लिये हमें अन्य प्रमाणों का भी सहारा लेना पड़ेगा।

ऊपर अभी यह बताया गया है कि सर्वात्मशिव अघोरशिव के प्रधान गुरु हैं और अपने पद्धति-ग्रन्थ को उन्होंने ११५७ ई० में पूरा किया है। अघोरशिव स्वयं भी तत्त्वत्रयनिर्णय की अपनी वृत्ति की समाप्ति में सर्वात्मशिव को अपना गुरु बताते हैं। आगे हम देखेंगे कि ३६ तत्त्वों की और इनसे भिन्न पुरुष तत्त्व की प्रतिपादन-पद्धति में दोनों ही ग्रन्थकारों में पूरी समानता दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से हम सिद्धान्तप्रकाशिका के कर्ता सर्वात्मशंभु को अघोरशिव का गुरु मान सकते हैं और तदनुसार ही इनका समय भी निर्धारित कर सकते हैं। किन्तु त्रिलोचन शिवाचार्य के प्रायश्चित्तसमुच्चय के आधार पर अघोरशिव और सर्वात्मशिव के विषय में जो कहा गया है, उसकी परीक्षा करनी होगी। अभी ऊपर बताया गया है कि राजेन्द्र चोल प्रथम (१०१२-४२ ई०) तीर्थयात्रा के प्रसंग में जब उत्तर भारत गये थे, तो वे लौटते समय अपने साथ शैवाचार्यों को भी ले आये थे। ऐसा माना जाता है कि उनमें त्रिलोचन शिवाचार्य भी एक थे। ऐसी स्थिति में सर्वात्मशिव और अघोरशिव को उद्धृत करनेवाले इस प्रायश्चित्तसमुच्चय के कर्ता कोई दूसरे ही त्रिलोचन शिवाचार्य हो सकते हैं।

ग्रन्थ का सम्पादन करते समय सभी आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियाँ जोड़ी गई हैं, तो भी पूरे ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयों की एक विश्लेषणात्मक समीक्षा हम यहाँ करना चाहते हैं।

स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर से भिन्न आत्मा की सत्ता चार्वाक को छोड़कर प्राय: सभी भारतीय दर्शनों को मान्य है। आत्मा के स्वरूप के विषय में प्राय: सभी दार्शनिकों में मतभेद हैं। ग्रन्थकार ने यहाँ सिद्धान्तशैव मत में स्वीकृत आत्मा के स्वरूप को सर्वप्रथम दिखाया है और बताया है कि आणव, कार्म, मायीय, बैन्दव और रोधशक्ति नामक पाँच पाशों से बँध जाने पर यही संसारी पुरुष कहा जाने लगता है। स्पष्ट है कि यहाँ पुरुष का स्वरूप सांख्य-संमत पुरुष के लक्षण से भिन्न प्रकार का है।

सूक्ष्म शरीर का स्वरूप भी सांख्य-संमत लक्षण से भिन्न है। सांख्यदर्शन में महत् से लेकर सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा) पर्यन्त १८ तत्त्वों के समूह से यह बना है, जब कि आगमशास्त्र में [५]पुर्यष्टक के नाम से प्रसिद्ध पृथिवी से कलातत्त्व पर्यन्त ३० तत्त्वों से इसकी रचना मानी गई है। "भूमिरापोऽनलो वायुः" (७.४) यहाँ भगवद्गीता में पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार को अष्टधा भिन्न अपनी प्रकृति बताया है। कालोत्तर (१७.४-५) में इन्हींको पुर्यष्टक नाम दिया गया है। भोजदेव के तत्त्वप्रकाश के टीकाकार कुमारदेव (पृ.३०) ने पृथिवी से लेकर कला-तत्त्व पर्यन्त तीस तत्त्वों को भी इसी पद्धति से अष्टधा विभक्त कर उनको पुर्यष्टक नाम दिया है। शाक्त तन्त्र के ग्रन्थ योगिनीहृदय के टीकाकार अमृतानन्द ने स्वच्छन्दसंग्रह को उद्धृत कर चिति, चित्त, चैतन्य, चेतनाद्वय, (ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय), जीव, कला और शरीर नामक सूक्ष्म पुर्यष्टक का निरूपण किया है (पृ.७१)। डॉ. वुडरफ ने भी "गारलैण्ड आफ लेटर्स" (पृ.२५६-२५७) में इनकी चर्चा की है।

सिद्धान्तशैव मत में प्रायः सर्वत्र पाँच ही पाश माने गये हैं। यहाँ भी इसी पक्ष को स्वीकार किया गया है। बिन्दु (महामाया) और रोधशक्ति को पाश मानने के विषय में विचार-वैभिन्र्य होता गया। यह कहा गया कि इनमें पाशत्व आरोपित है, औपचारिक रूप से ही इनको पाश कहा जा सकता है। हमने लुप्ता० उपो० (पृ.१५०) में इस विषय पर विचार किया है। फलतः बाद में तीन ही पाश माने जाने लगे और प्रत्यभिज्ञा तथा शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन में तीन ही पाश मान्य हुए।

ग्रन्थकार ने इसके आगे कार्यदशक, करणदशक और अन्तःकरणत्रय का जो विवरण दिया है, वह पूरी तरह से सांख्य की प्रक्रिया के अनुरूप है, किन्तु त्रिविध अहंकार से उत्पन्न सृष्टि के विषय में सांख्य से आगम की दृष्टि भिन्न हो जाती है। सांख्यकारिका में सात्त्विक अहंकार से एकादश इन्द्रियों की तथा तामस अहंकार से पाँच तन्मात्राओं की सृष्टि मानी गई है। षोडश विकार के नाम से ये वहाँ प्रसिद्ध हैं। राजस अहंकार इन दोनों का सहायक है, क्योंकि प्रवृत्ति रजोगुण का ही धर्म है। इसके विपरीत शैव-शाक्त आगमों में त्रिविध अहंकारों से अलग-अलग सृष्टि बताई गई है। तन्त्रालोक आदि में इन मतभेदों को देखा जा सकता है। उनके आधार पर इनकी चर्चा अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.३७-३८) में भी की गई है। इस प्रसंग में

५. पुर्यष्टक शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने भी किया है (पृ.१६)।

एक बात विशेष रूप से अवधेय है। सांख्यकारिका में यहाँ वैकृत, तैजस और भूतादि नामक प्राचीन शब्दों का प्रयोग क्रमश: सत्त्व, रज और तम के अर्थ में किया है, जब कि अनेक [६]आगमों में सत्त्व के लिये तैजस और रज के लिये वैकृत शब्द प्रयुक्त हैं। यह विषय इतना जटिल हो गया है कि सांख्यकारिका को आधार मानकर अभिनवगुप्त ने आगमिक पक्ष के उपस्थापक सद्योज्योति शिवाचार्य के मत को अस्वीकार कर दिया है, जब कि उनके द्वारा सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के रूप में मान्य मालिनी-विजय में भी आगमिक मत को ही मान्यता मिली है।

उभयत्र पाँच प्राणों की सृष्टि अहंकार से ही मानी गई है, किन्तु यहाँ भी सांख्य की दृष्टि से आगम की दृष्टि भिन्न है। इसकी चर्चा हम ग्रन्थ में यथास्थान टिप्पणी देकर कर चुके हैं (पृ.४)।

प्रस्तुत ग्रन्थकार ने ३६ तत्त्वों में गुणतत्त्व की अलग से गणना की है। इस विषय की चर्चा पृ. ६-७ की टिप्पणी में की गई है। शैवागमों में अशुद्धाध्वा में चौबीस तथा मिश्राध्वा (शुद्धाशुद्धाध्वा) में सात तत्त्व परिगणित है, किन्तु यहाँ गुण को पृथक् तत्त्व मानकर अशुद्धाध्वा की संख्या २५ तथा [७]पुरुषतत्त्व को बाद कर मिश्राध्वा में पाँच ही तत्त्व माने हैं। माया का भी यहाँ समावेश नहीं किया गया है। इस प्रकार के विभाग को दिखानेवाला अन्य कोई ग्रन्थ हमारी दृष्टि में अब तक नहीं आया है।

सूक्ष्म देह के प्रसंग में यहाँ प्रारंभ में इकतीस तथा बाद में तीस तत्त्वों का उल्लेख है और इन सबका कारण अशुद्ध मायातत्त्व को माना है। वस्तुत: ग्रन्थकार की पद्धति से भी पचीस अशुद्ध तत्त्व और पाँच मिश्र तत्त्व मिलकर तीस तत्त्व होंगे और इन सबका कारण अशुद्ध मायातत्त्व इकतीसवाँ होगा। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मायातत्त्व का अन्यत्र भी ३१वाँ ही स्थान है, किन्तु उसकी गणना अशुद्ध तत्त्वों में न होकर मिश्र (शुद्धाशुद्ध) तत्त्वों में होती है। यहाँ हम यह मान सकते हैं कि शुद्ध माया (महामाया कुण्डलिनी) से इसकी भिन्नता दिखाने

---

६. मृगेन्द्रागम विद्यापाद (१२.२) में आगमों की पद्धति से ही यह विषय उपस्थापित है, जब कि मतंगपारमेश्वर के विद्यापाद (१८.४३-४५) में सांख्यकारिका का अनुसरण किया गया है।

७. अघोरशिव ने भी पुरुष के स्वरूप का वर्णन इसी तरह से किया है। वे भी शिव से पृथिवी पर्यन्त ३६ तत्त्वमय जगत् को जड़ तथा पुरुष को चेतन, अत एव षडध्व से अलग मानते हैं। अघोरशिव के इस मत की समालोचना हम अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.२५-२६ तथा ३२) में कर चुके हैं। प्रस्तुत प्रस्तावना में भी आगे (पृ.१२) इस पर विचार हुआ है।

के लिये यहाँ अशुद्ध विशेषण लगाया गया है, किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि ग्रन्थकार ने मिश्राध्वा में पाँच ही तत्त्वों का परिगणन किया है, जो कि अन्यत्र पंचकंचुक के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल नामक सात प्रमाताओं के स्वरूप पर विचार करते समय अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.२५-२९) में अघोरशिव, कुमार, श्रीकण्ठ आदि के मतों को उपस्थापित करते हुए हमने निष्कर्ष निकाला है कि अधिकार पद पर आरूढ विज्ञानकेवली ही अपने त्रिविध आरोह-क्रम में मन्त्र (विद्या), मन्त्रेश्वर (ईश्वर) और मन्त्रमहेश्वर (सदाशिव) पद को प्राप्त कर लेते हैं। अधिकारपदारूढ प्रलयाकल पृथिवी से लेकर कलातत्त्व पर्यन्त भुवनों का स्वामी बन जाता है। शतरुद्रों की भी इन्हीं प्रलयाकलों में गणना होती है। सकल जीवों में जिनके मल परिपक्व हो जाते हैं, वे हिरण्यगर्भ आदि देवों की, सनक आदि योगियों, आचार्यों, ऋषियों की तथा अन्य देवताओं की पदवी को प्राप्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में शुद्धविद्या, ईश्वरतत्त्व, ११८ रुद्र और अधिकार, भोग एवं लय (सदाशिव, शक्ति और शिव) तत्त्वों का जो स्वरूप प्रदर्शित है, उसे इसी पृष्ठभूमि में समझना चाहिये। ११८ रुद्रों का वर्णन यहाँ प्रलयाकल के प्रसंग में ही आया है। यहाँ विज्ञानाकल आदि की कोई व्यवस्थित चर्चा नहीं हुई है, किन्तु पूरे प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ ऊपर बताई गई पद्धति से अधिकारपदारूढ विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल जीवों की ही चर्चा की गई है। "एतेषां विद्येश्वराणां च शरीरं बैन्दवम्, अष्टादशशतरुद्राणां शरीरं मायीयम्, ब्रह्मविष्ण्वादीनां शरीरं प्राकृतम्" (पृ.१२) यह वाक्य इस विषय की पुष्टि करता है। अधिकारपद को न चाहनेवाले वैराग्यसम्पन्न सकल जीव मुक्तात्मा की पदवी को प्राप्त करते हैं।

यहाँ (पृ.१३-१४) सकल बिन्दु, सकल नाद, कारण बिन्दु, सूक्ष्म नाद जैसे शब्दों का प्रयोग अधिकार, भोग और लयावस्था, अर्थात् सदाशिव, शक्ति और शिव तत्त्व के विवरण के प्रसंग में किया गया है और कहा गया है कि बिन्दु और शिव में तत्त्व की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। ग्रन्थकार ने यहाँ बिन्दु का लक्षण भी दिया है। रत्नत्रयकार श्रीकण्ठ ने ८बिन्दु को और नादकारिकाकार

---

८. "शब्दतत्त्वमघोषा वाग् ब्रह्म कुण्डलिनी ध्रुवम्। विद्याशक्तिः परो नादो महामायेति देशिकैः।। बिन्दुरेवं समाख्यातो व्योमाऽनाहतमित्यपि।" (श्लो. ७०-७१)।

भट्ट रामकण्ठ[९] ने नाद को प्रधान तत्त्व माना है। अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.१२-१५) में हमने परबिन्दु-परनाद, सूक्ष्मबिन्दु-सूक्ष्मनाद आदि स्थितियों का विस्तार से वर्णन किया है। हमारे "आगम और तन्त्रशास्त्र" नामक हिन्दी निबन्ध संग्रह में प्रकाशित "आगम और तन्त्रशास्त्र को कविराजजी की देन" शीर्षक (पृ.१८) "आगम और तन्त्रशास्त्र की सृष्टिप्रक्रिया" शीर्षक (पृ.८४-८५) और "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" नामक संस्कृत निबन्ध-संग्रह में प्रकाशित "आचार्यशङ्करीयः प्रपञ्चसारः" शीर्षक निबन्ध (पृ.१९५-१९९) में भी बिन्दुनाद के स्वरूप पर विचार किया गया है।

म० म० भारतरत्न पी० वी० काणे म० म० गोपीनाथ कविराज के गंगानाथ झा शोधसंस्थान की पत्रिका में प्रकाशित नाद-बिन्दुविषयक निबन्ध[१०] की चर्चा करते हुए कहते हैं कि पूरे निबन्ध को पढ़ जाने के बाद भी हमारी समझ में कुछ नहीं आया। इस विषय की चर्चा हमने "आगम और तन्त्रशास्त्र" (पृ.१८) में की है। इससे स्पष्ट होता है कि तन्त्रागमशास्त्र का यह एक अत्यत जटिल विषय है। अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.२२-२५) को देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न आगमों और ग्रन्थों में इसकी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। प्रपंचसार और शारदातिलक की भी यही स्थिति है। ऐसी अवस्था में हमारे लिये एक ही मार्ग सुरक्षित है कि शाखाभेद न्याय से जैसे वैदिक कर्मकाण्ड के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की जाती है, उसी तरह से गुरु-परम्परा से प्राप्त आगम के अनुसार हम बिन्दु और नाद के स्वरूप को समझें। स्थूल रूप से हम दोनों शब्दों को वंश-परम्परा और शिष्य-परम्परा के मूल तत्त्वों के रूप में समझ सकते हैं। वंश-परम्परा में बिन्दुतत्त्व की और शिष्य-परम्परा में नादतत्त्व की प्रधानता है।

षडध्व का विवरण यहाँ सिद्धान्तशैवागम के अनुसार ही है। मन्त्रों की संख्या यहाँ बारह बताई गई है। पाठान्तर में इनकी संख्या ग्यारह ही है, जो कि सिद्धान्त-शैवागम में मान्य है। यहाँ मूल (पंचाक्षर अथवा षडक्षर) मन्त्र की भी पंचब्रह्म और षडंग मन्त्रों के साथ गणना कर मन्त्रों की संख्या बारह बताई गई है। वीरशैव आगमों

---

९. "तत्सिद्धो नादः परः सुमङ्गला मालिनी महामाया। समनाऽनाहता बिन्दुरघोषा वाग् ब्रह्म कुण्डलिनीतत्त्वम्। विद्याख्यं तत्त्वमित्युक्तं तैस्तैस्तदागमेष्वित्थम्।।" (श्लो. १६-१७)।

१०. धर्मशास्त्र का इतिहास, तन्त्रखण्ड, पृ. २५-२६ देखिये (हिन्दी समिति, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत हिन्दी संस्करण, सन् १९८४)।

में भी मुख्य मन्त्रों की संख्या बारह ही मानी गई है। ग्रन्थकार ने आगे भुवनाध्वा का तत्त्वाध्वा को और तत्त्वाध्वा का कलाध्वा को आश्रय बताया है, किन्तु वर्ण, पद और मन्त्र के विषय में इस प्रक्रिया को स्पष्ट नहीं किया। यहाँ भी मन्त्राध्वा पदाध्वा पर और पदाध्वा वर्णाध्वा पर आश्रित है। इस विलयन के बाद पूर्व त्रिक में कलाध्वा और उत्तर त्रिक में वर्णाध्वा बचे रहते हैं। कलाओं की संख्या पाँच मानी गई है। वर्णाध्वा के ५० या ५१ वर्णों का इन्हीं पाँच कलाओं में विलयन होता है। इस प्रक्रिया पर हमने लुप्ता०उपो० (पृ. १८८-२०२) में तथा अन्यत्र[११] भी विचार किया है। तन्त्रयात्रा (पृ.१४-३४) में प्रकाशित "वैष्णवेषु तदितरेषु चागमेषु षडध्वविमर्श:" शीर्षक निबन्ध भी इस प्रसंग में देखा जा सकता है।

यहाँ प्रदर्शित पाँच कलाओं की उत्पत्ति के प्रसंग में अष्टप्रकरण में समाविष्ट ग्रन्थ रत्नत्रय (श्लो.७०-८९) में बिन्दु के पर्याय नामों का उल्लेख कर बताया गया है कि इस बिन्दु[१२] की ही वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूक्ष्मा नामक चार वृत्तियाँ होती हैं। इन चतुर्विध वृत्तियों का स्वरूप बताने के बाद यहाँ कहा गया है कि बिन्दु की ये वृत्तियाँ ही निवृत्ति आदि पाँच कलाओं का स्वरूप धारण कर लेती हैं और इस कलाध्वा की ही शेष पाँच अध्वाओं में व्याप्ति रहती है।[१३]इनको अध्वा क्यों कहा जाता है, इसको भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। पंचब्रह्म के सद्योजात आदि स्वरूपों में विद्यमान ३८ कलाओं का भी विवरण [१४]शास्त्रों में मिलता है। अनुभवसूत्र[१५] में भी नाद और बिन्दु के साथ कला की भी चर्चा की गई है।

कश्मीर शैवागम के ग्रन्थों में पदाध्वा की व्याख्या भिन्न प्रकार से की गई है, इसकी चर्चा हम [१६]अन्यत्र कर चुके हैं। वस्तुत: सिद्धान्तशास्त्रों में इदम्प्रथमतया

---

११. विज्ञानभैरव की हमारी व्याख्या (पृ. ५९-६३) देखिये।

१२. "सैषा चतुर्विधा वृत्तिर्निवृत्त्यादिकलाश्रयात्। पञ्चधा भिद्यते भूय: कलास्ता बिन्दुवृत्तय:।।" (श्लो.८५)।

१३. "त्यक्त्वैकमेकं सम्प्राप्य कलादिष्वजरामरम्। पदमासाद्यते पुंभिरतोऽध्वान: कलादय:।।" (श्लो.८८)।

१४. देखिये — स्वच्छन्दतन्त्र (१.५३-५९), नेत्रतन्त्र (२२.२६-३४) तथा लिङ्गधारणचन्द्रिका (पृ.२७४-२८१)।

१५. द्रष्टव्य — अनुभवसूत्र (३.१६)।

१६. लुप्तागमसंग्रह के द्वितीय भाग का उपोद्घात (पृ.१७४-१८३) तथा वहाँ की टिप्पणियाँ देखिये।

षडध्वों का विवेचन किया गया है और वहाँ व्योमव्यापी आदि ८१ पदों की नामावली परिगणित है। मुख्य रूप से यही मत हमें[१७] मान्य होना चाहिये। काश्मीर शैवागम के ग्रन्थों में पदाध्वा की जो व्याख्या की गई है, उसमें क्लिष्ट कल्पना का ही सहारा लिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ (पृ.१६) में [१८]कुण्डलिनी को शुद्धमाया, शुद्धविद्या और ब्रह्म भी कहा गया है और इसको षडध्व का परम कारण बताया है। इसी तरह त्रिविध (सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल) पशुओं को भी षडध्व से भिन्न कहा गया है। यह [१९]पहले ही बताया जा चुका है कि आत्मा या पुरुष की गणना प्रस्तुत ग्रन्थ में ३६ तत्त्वों में नहीं की गई है। यहाँ भी षडध्वों को आत्मा का संसार माना गया है (पृ.१६)। ग्रन्थ के प्रारंभ में भी पाशबद्ध आत्मा को संसारी पुरुष कहा गया है (पृ.२)। इस विवरण से और त्रिविध पशुओं का परिचय देनेवाले प्रकरण से ऐसा लगता है कि ग्रन्थकार के मत में बन्धन से मुक्त आत्मा ही बन्धन से युक्त होकर सकल आदि त्रिविध नाम धारण कर लेती है। अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ.२५-२६,३२) में अघोरशिव के मत की आलोचना करते समय हमने देखा है कि सभी छत्तीस तत्त्व उनके मत में जड़ हैं। यहाँ भी [२०]बिन्दु से शिव को अभिन्न बताकर बिन्दु को जड़ माना है। हमारे सामने उपलब्ध शैवागमों में इसकी पुष्टि नहीं होती। अघोरशिव भोजदेव के तत्त्वप्रकाश की एक [२१]आर्या को प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि वह उनके मन्तव्य के विपरीत पड़ती है। इसके बीज हमें दक्षिण के तमिल शैव-साहित्य में, अब तक अप्रकाशित शैवागमों में अथवा अघोरशिव के ग्रन्थों में खोजने होंगे।

---

१७. वास्तुपुरुष की पूजा ८१ पदों के मण्डल में ही की जाती है। व्योमव्यापी स्तव में इन पदों से भगवान् शिव की स्तुति की गई है।

१८. रत्नत्रय और नादकारिका के ऊपर की ८-९ संख्याओं की टिप्पणियों में उद्धृत श्लोकों को देखिये। वहाँ बिन्दु और नाद को भी इन्हीं विशेषणों से संबोधित किया गया है।

१९. ऊपर पृ. ८ तथा वहाँ की सातवीं टिप्पणी देखिये।

२०. "बिन्दोः शिवतत्त्वस्य च तत्त्वे भेदव्यपदेशो नास्ति" (पृ. १४)।

२१. "पञ्चानामाद्यानाम्" (श्लो. ३२) इत्यादि कारिका की व्याख्या देखिये। इस पर हमारा मन्तव्य अष्ट० उपो०, पृ. २३ पर देखा जा सकता है।

जैसा कि पहले सूचित किया गया, यहाँ पाँच पाशों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। मल या बन्ध के नाम से भी इनको संबोधित किया गया है। यहाँ बताया गया है कि रोध नामक शिव की शक्ति ही औपचारिक रूप से पाश कहलाती है और यही शेष [२२]चार पाशों का प्रसार करती है। इसीके तरतमभाव से शुद्धाध्वा, मिश्राध्वा और अशुद्धाध्वा की स्थिति बनती है। आगे रोधशक्ति से प्रस्फुटित बैन्दव, मायीय, आणव और कार्म पाशों का स्वरूप बताया गया है और यह भी निर्दिष्ट है कि इनकी निवृत्ति किस तरह से होती है। कार्म पाश के विषय में कहा गया है कि यह प्रवाह की तरह अनादिकाल से चला आ रहा है और भोग से इसका नाश होता है। कार्म पाश के विषय में यह भी कहा गया है कि विज्ञान, योग, संन्यास से अथवा भोग से इसकी निवृत्ति होती है। जिज्ञासु व्यक्ति शास्त्र का अध्ययन कर इनके स्वरूप को जान सकता है। इसके साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम विषय (तत्त्वों का विवरण) पूरा हो जाता है।

इस प्रकार ३६ तत्त्वों का निरूपण करने के बाद ग्रन्थकार शास्त्रों का परिचय आगम की दृष्टि से देते हैं। आगमों में शास्त्रों के पाँच[२३] विभाग किये गये हैं — लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, आतिमार्गिक और मान्त्रिक। हमने बताया है कि इनमें से प्रत्येक के पुनः पाँच-पाँच उपविभागों की [२४]शास्त्रों में चर्चा है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम चार विभागों के दो या तीन उपविभागों का ही परिचय दिया गया है। पाँचवें मान्त्रिक विभाग के पाँच उपविभाग यहाँ अवश्य वर्णित हैं।

---

२२. मृगेन्द्रागम विद्यापाद (२.७) में चार ही पाश माने गये हैं। तदनुसार भोजदेव ने भी तत्त्वप्रकाश के श्लो. ५ में पाँच पाशों को बताकर बाद में श्लो. १७ में "पाशाश्चतुर्विधाः" पक्ष भी उपस्थापित किया है।

२३. बौद्ध तन्त्र-ग्रन्थ वसन्ततिलक की टीका (पृ.७२) में परनिकाय में प्रसिद्ध चतुर्दश विद्यास्थानों का परिगणन कर स्वनिकाय-प्रसिद्ध पाँच विद्यास्थानों का वर्णन इस प्रकार किया है —

लक्षणं हेतुविद्या च तथैवाध्यात्मिकी पुनः ।
चिकित्सा शिल्पशास्त्रे द्वे विद्यास्थानानि पञ्च च ॥

यद्यपि इन पाँच विद्यास्थानों का यहाँ विशेष विवरण नहीं दिया गया, तो भी संख्या की समानता हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट करती है कि आगम-तन्त्रशास्त्र में शास्त्रों का विभाजन भिन्न प्रकार से किया गया है। चतुर्दश विद्यास्थान और अष्टादश विद्यास्थानों की नामावली यहाँ परिशिष्ट में दिये प्रस्थानभेद में तथा शिवपुराण आदि में भी मिलती है। इसको हम नैगमिक विभाग कह सकते हैं।

२४. ऊपर की पहली टिप्पणी देखिये।

महान् वेदान्ती और भक्त मधुसूदन सरस्वती के प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थ की चर्चा पहले हो चुकी है। पुष्पदन्त के महिम्नस्तव के सातवें श्लोक में आये "प्रभिन्ने प्रस्थाने" पदों की व्याख्या में सरस्वतीजी ने यह सारा विषय प्रस्तुत किया है। लगता है, उसीको स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना से प्रकाशित सर्वदर्शनसंग्रह में परिशिष्ट के रूप में संमिलित कर लिया गया है। संभव है, [२५]स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में ही उन्होंने इसकी रचना की हो। इतना स्पष्ट है कि यह पूरा ग्रन्थ आनुपूर्वी से उक्त मधुसूदनी टीका में मिलता है। वहाँ कोष्ठक में चौंसठ कलाओं के नाम भी मिलते हैं, जिनकी यहाँ केवल चर्चा हुई है। इन चौंसठ कलाओं की नामावली अक्षपाद-रचित कामसूत्र की जयमंगलाटीका[२६] में भी देखी जा सकती है। इस प्रसंग में हम यह बता [२७]चुके हैं कि प्रस्तुत ग्रन्थ में आगमशास्त्रों का परिचय विस्तार से दिया गया है, जब कि मधुसूदन सरस्वती ने निगमशास्त्र का परिचय विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। यहाँ हम इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर इस प्रकरण की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थकार ने लौकिक विभाग में [२८]आयुर्वेद और दण्डनीति का केवल नाम दिया है, जब कि प्रस्थानभेद में चार उपवेदों के रूप में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और बहुविध अर्थशास्त्र का निरूपण किया है। अर्थशास्त्र के साथ नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र, चतुष्षष्टिकलाशास्त्र का परिगणन किया गया है। आयुर्वेद और धनुर्वेद का परिचय यहाँ कुछ विस्तार से दिया गया है, किन्तु उसी पद्धति से भरत के नाट्यशास्त्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्र का परिचय नहीं दिया गया। प्रस्तुत ग्रन्थकार लौकिक शास्त्र को दृष्टफलशास्त्र कहते हैं।

---

२५. प्रस्थानभेद कें हस्तलेखों, संस्करणों और बंगला, अंग्रेजी अनुवादों का विवरण न्यू० कै०, भा. १३, पृ. १२९-१३० पर देखिये।

२६. कामसूत्र और उसकी जयमंगला टीका में भी (१.३.१५-१६) चौंसठ कलाओं के नाम मिलते हैं।

२७. ऊपर प्रस्तावना के पृ. ४-५ देखिये।

२८. स्वच्छन्दतन्त्र (११.४३-४५) की टीका में क्षेमराज ने लौकिक विभाग में वार्ता, दण्डनीति, आयुर्वेद, धनुर्वेद और नाट्यवेद का समावेश किया है।

वैदिक विभाग में मीमांसाशास्त्र, वैशेषिकशास्त्र और न्यायशास्त्र परिगणित हैं। इन तीनों का यहाँ संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। ग्रन्थकार इन तीनों को दृष्टादृष्टफल शास्त्र कहते हैं। वैशेषिक शास्त्र का परिचय देते समय ये छः पदार्थों का ही उल्लेख करते हैं, जब कि प्रस्थानभेद में अभाव नामक सप्तम पदार्थ भी निर्दिष्ट है। वैशेषिक शास्त्र का परिचय देने के बाद न्यायशास्त्र का संक्षिप्त परिचय देकर यहाँ बताया है कि प्रमाण और प्रमेय आदि का विचार यहाँ वैशेषिक के समान ही है। इस पर हम मूल ग्रन्थ में टिप्पणी कर चुके हैं। प्रस्थानभेद में इन दोनों को न्याय अथवा आन्वीक्षिकी बताकर गौतमप्रणीत पंचाध्यायी न्यायशास्त्र का तथा उसके प्रतिपाद्य षोडश पदार्थों का एवं कणादप्रणीत दशाध्यायी वैशेषिकशास्त्र का परिचय स्वतन्त्र रूप से दिया है।

मीमांसाशास्त्र का प्रस्थानभेद में अधिक विस्तार से वर्णन है। कर्ममीमांसा और शारीरकमीमांसा का परिचय देकर इन्होंने पहले जैमिनि-प्रणीत द्वादशाध्यायी कर्ममीमांसा का संक्षिप्त परिचय दिया है और बताया है कि चार अध्यायों का संकर्षण काण्ड भी जैमिनि द्वारा ही प्रणीत है। इसको देवताकाण्ड के नाम से भी जाना जाता है। उपासना का प्रतिपादक होने से इसका समावेश कर्ममीमांसा में ही किया जाता है। आगे चतुरध्यायी शारीरकमीमांसा का परिचय देते समय इसके चारों अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय के चारों पादों के विषयों का भी विवरण दिया गया है। इस शास्त्र का परिचय देने के बाद यहाँ बताया गया है कि वेदान्तशास्त्र ही सभी शास्त्रों में मूर्धन्य है। ग्रन्थ के अन्त में भी मधुसूदन सरस्वती का कहना है कि सभी शास्त्रों का पर्यवसान विवर्तवाद के माध्यम से अद्वय ब्रह्म के प्रतिपादन में ही है। इस उक्ति से ग्रन्थकार की शांकर अद्वयवाद में दृढ निष्ठा द्योतित होती है।

आध्यात्मिक विभाग में यहाँ सांख्य, पातंजलयोग और वेदान्तशास्त्र का समावेश है। इनका संक्षिप्त परिचय भी यहाँ दिया गया है। इस प्रसंग में हम यथा-स्थान टिप्पणियाँ दे चुके हैं। वेदान्तशास्त्र का परिचय देते हुए यहाँ उसके चार उपविभाग किये गये हैं। उनके नाम हैं — भास्करीय, मायावादी, शब्दब्रह्मवादी और क्रीडाब्रह्मवादी। भास्कराचार्य का ब्रह्मसूत्रभाष्य छप चुका है। इनके गीताभाष्य का भी कुछ अंश छपा है। बृहदारण्यक उपनिषद् पर भी इन्होंने भाष्य लिखा था। उसकी सूचनामात्र मिलती है। ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। ये द्वैताद्वैतवादी आचार्य थे। मायावादी वेदान्त भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित है।

शब्दब्रह्मवाद और क्रीडाब्रह्मवाद के प्रतिपादक वेदान्तभाष्य आज उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु वहाँ की टिप्पणी में हमने बताया है कि शब्दब्रह्मवाद भर्तृहरि के वाक्यपदीय में और क्रीडाब्रह्मवाद कश्मीर के प्रत्यभिज्ञादर्शन में प्रतिपादित है। प्रस्थानभेद में यहाँ निर्दिष्ट तीन वेदान्तों की कोई चर्चा नहीं है।

आस्तिक और नास्तिक शास्त्रों का विवरण देते हुए ग्रन्थकार ने मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, पातंजल योग और वेदान्त नामक छः शास्त्रों का आस्तिक विभाग में समावेश कर बताया है कि ये सब वैदिक शास्त्र हैं। इनमें केवल वेदान्त अद्वैत का प्रतिपादक है, अन्य पाँचों शास्त्र भेदवादी हैं। वेदबाह्य शास्त्रों का नास्तिक विभाग में समावेश कर वे आगे बौद्ध, आर्हत और लोकायत शास्त्रों का परिचय देते हैं। यहाँ नास्तिकता के प्रयोजक तीन तत्त्वों की ये चर्चा करते हैं। उनमें से एक है वेदबाह्यता, दूसरा ईश्वर की अस्वीकृति और तीसरा आचारहीनता। आचारहीनता का अभिप्राय श्रौत-स्मार्त आचारों की अस्वीकृति से लेना चाहिये।

इस प्रकार षड्विध वैदिक शास्त्रों की चर्चा कर यहाँ ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक चारों वेदों की; छन्दोविचिति, कल्प, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त और ज्यौतिष नामक छः वेदांगों की; वेदों के मन्त्र, ब्राह्मण और विधि भाग की, ब्राह्मण आदि वर्णों के एवं ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के धर्मों की और उपनिषद् भाग की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है। साथ ही आशौच आदि व्यवहार और प्रायश्चित्त आदि के नियामक मनु आदि के द्वारा प्रणीत अठारह प्रकार की स्मृतियों (धर्मशास्त्र) और उनके प्रणेता मनु आदि की चर्चा है। इसी प्रसंग में यहाँ वासुदेवप्रणीत पांचरात्र-शास्त्र की और इतिहास-पुराणों की भी चर्चा है।

चार वेदों और छः वेदांगों की चर्चा आ चुकी है। इनके साथ उपांगों के रूप में पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र को मिलाकर प्रस्थानभेद में पहले १४ विद्यास्थानों का तथा बाद में उपवेदों के रूप में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र को मिलाकर १८ विद्यास्थानों का विस्तार से परिचय दिया है और कहा है कि आस्तिकों के इतने ही शास्त्र हैं, बाकी सबका इन्हींमें अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे कि उपपुराणों का पुराण में, वैशेषिक का न्याय (आन्वीक्षिकी) में, वेदान्त का मीमांसा में और रामायण, महाभारत, सांख्य, पातंजल योग, पाशुपत और वैष्णव तन्त्र का धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव मान्य है। नास्तिकों के प्रस्थानान्तरों की चर्चा करते हुए शून्यवाद (माध्यमिक), क्षणिक विज्ञानवाद (योगाचार), सौत्रान्तिक

(बाह्यार्थानुमेयवाद) और वैभाषिक (क्षणिक बाह्यार्थवाद) नामक बौद्धों के चार प्रस्थानों को, चार्वाकों के देहात्मवाद को और दिगम्बरों के देहपरिमाणात्मवाद को नास्तिकों के छः प्रस्थानों के रूप में प्रस्तुत किया है और कहा है कि वेदबाह्य होने से इनकी पुरुषार्थ की प्राप्ति में कोई उपयोगिता नहीं है। सिद्धान्तप्रकाशिकाकार ने इन शास्त्रों के विषय में इस तरह की कोई बात नहीं कही है। यह "रुचीनां वैचित्र्यात्" (म०स्तो० ७) इस स्थापना के विपरीत भी है। निगमागम का दृष्टिभेद इससे भी स्पष्ट हो जाता है। तो भी सभी शास्त्रों की लक्ष्य-प्राप्ति में अपनी दृष्टि से तरतमभाव अवश्य दोनों ही ग्रन्थों से [२९]प्रकाशित होता है।

प्रस्थानभेद में उक्त सामान्य बातों की चर्चा के बाद मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद का लक्षण बताकर मन्त्रों के ऋक्, यजुः और साम नामक [३०]तीन विभागों के ही लक्षण दिये गये हैं। ब्राह्मणों के भी विधि, अर्थवाद और तदुभयविलक्षण —ये तीन विभाग किये गये हैं। यहाँ भट्ट कुमारिल, भट्ट प्रभाकर और तार्किकों की दृष्टि से विधि का लक्षण बताते हुए विधि के उत्पत्ति, अधिकार, विनियोग और प्रयोग नामक चार भेद और उनके लक्षण बताये हैं। इसी प्रसंग में कर्म के दो भेदों की चर्चा कर गुणकर्म के उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और [३१]संस्कृति नामक चार भेद और अर्थकर्म के अंग और प्रधान नामक दो भेद, पुनः अंगकर्म के संनिपत्योपकारक तथा आरादुपकारक नामक दो भेदों के लक्षणों को बताकर इन सबको उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया है। इस तरह विधिभाग का निरूपण कर गुणवाद, अनुवाद

---

२९. सिद्धान्तप्रकाशिका (पृ. ३५-३६, ४०-४३) में सिद्धान्तशैव मत की और प्रस्थानभेद (पृ. ५२) में शांकर वेदान्त की श्रेष्ठता और उसीमें सभी शास्त्रों का पर्यवसान माना गया है।

३०. प्रस्थानभेद में त्रयी को प्रधानता दी गई है, जब कि सिद्धान्तप्रकाशिका में चारों वेदों को समान कोटि में रखा गया है। ऐसा लगता है कि अथर्ववेद की मान्यता में कमी आ गई थी। जयन्त भट्ट ने अपने महनीय ग्रन्थ न्यायमंजरी (पृ. २३१-२३९) में अथर्ववेद के प्रामाण्य के विषय में विस्तार से विचार किया है।

३१. भारतीय शास्त्रों में संस्कृति शब्द के उल्लेख के विषय में हम सारनाथ में सम्पन्न हुई "भारतीय तन्त्रशास्त्र" विषयक गोष्ठी मे शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के "संस्कृतिर्विश्ववारा" (७.१४) मन्त्र का उल्लेख कर चुके हैं। गुणकर्म के एक भेद के रूप में आया यह शब्द भी शोभन संस्कारों को ही सूचित करता है।

और भूतार्थवाद नामक त्रिविध अर्थवाद का भी सोदाहरण लक्षण बताकर, इनका प्रामाण्य स्पष्ट कर स्वयं प्रामाण्य का लक्षण भी दिया है। यहाँ वेदान्तवाक्यों (उपनिषद्भाग) को उभय-विलक्षण विभाग में रखा गया है। इतना सब बताने के बाद यहाँ वेद के कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड नामक दोनों विभागों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों का कारण माना है। यह भी बताया है कि प्रवचन के भेद से वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। उनके कर्मकाण्ड में भेद रहते हुए भी ब्रह्मकाण्ड में सर्वत्र एकरूपता है।

इस प्रकार सभेदोपभेद तीन वेदों के स्वरूप को बताकर यहाँ शिक्षा (प्रातिशाख्यसहित), पाणिनि व्याकरण, यास्कप्रणीत निरुक्त और निघण्टु, छन्दोविचिति (पिंगल का छन्दःशास्त्र), ज्यौतिष और कल्पसूत्रों का परिचय देने के बाद पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र का परिचय दिया गया है। अठारह पुराणों के नामों के साथ यहाँ उपपुराणों की भी नामावली दी गई है। उपपुराणों के विषय में डॉ० आर० जी० हाजरा ने दो भागों में ''स्टडीज इन उपपुराणस्'' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है। यहाँ की उपपुराणों की नामावली का वहाँ उपयोग हुआ है या नहीं, यह देखना होगा। न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र नामक तीनों उपांगों का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। स्मृतिकारों की नामावली तो प्रस्थानभेद में दी ही गई है, साथ ही आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र नामक उपवेदों की भी यथास्थान चर्चा की गई है। इन सब शास्त्रों का यहाँ 'त्रयी' में अन्तर्भाव किया है। अथर्ववेद[३२] के लिये यहाँ कहा गया है कि इसका यज्ञ में कोई उपयोग नहीं होता। यहाँ शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक कर्मों का प्रतिपादन है, अतः यह त्रयी से अत्यन्त विलक्षण है (पृ.४७)।

इस तरह से अष्टादश विद्यास्थानों का निरूपण करने के बाद प्रस्थानभेद में आगे कपिलप्रणीत छः अध्यायवाले [३३]सांख्यसूत्र का, चार पादवाले पातंजल

---

३२. ऊपर की ३० संख्या की टिप्पणी देखिये।

३३. छः अध्यायवाले सांख्यसूत्रों की रचना परवर्ती काल में हुई, ऐसी आधुनिक विद्वानों की धारणा है, क्योंकि भगवत्पाद शंकराचार्य आदि ने सांख्यकारिका को ही उद्धृत किया है। भोजदेवकृत तत्त्वप्रकाश की टीका (पृ. ८०) में कुमारदेव ने सांख्यसूत्र को उद्धृत किया है, अतः कुमारदेव के समय में, जो कि अघोरशिव से पहले अवश्य हो चुके थे, सांख्यसूत्र की स्थिति स्पष्ट होती है।

योगसूत्र का, पाँच अध्यायवाले पाशुपतसूत्र का और नारद आदि के द्वारा प्रणीत वैष्णव मत को छोड़ अन्य शैवसिद्धान्तशास्त्र, कापालिक और कालामुख (महाव्रती) नामक शैव सम्प्रदायों का तथा पांचरात्र को छोड़ अन्य वैष्णव तन्त्रों अथवा शाक्त तन्त्रों का भी कोई परिचय नहीं दिया गया। कामशास्त्र और नाट्यशास्त्र का उल्लेख तो ग्रन्थकार ने किया है, किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र की कोई चर्चा नहीं की।

षड्विध वैदिक शास्त्रों का और मन्वादिप्रणीत स्मृतियों का उल्लेख कर सिद्धान्तप्रकाशिकाकार ने पांचरात्र शास्त्र का विवरण देते हुए चार व्यूहों के नाम कृष्ण, अनिरुद्ध, मकरध्वज और रौहिणेय दिये हैं, जब कि पांचरात्र संहिताओं में कृष्ण के स्थान पर वासुदेव या नारायण नाम गृहीत है और आगे इनका क्रम रौहिणेय (बलभद्र), मकरध्वज (प्रद्युम्न) और अनिरुद्ध — इस तरह से है। प्रस्थानभेद में भी यही क्रम स्वीकृत है। वहाँ इनको क्रमशः परमेश्वर, जीव, मन और अहंकार का प्रतिनिधि माना है, जो कि ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य (२.२.४२) के अनुरूप है।

इतिहास-पुराण के विषयों को प्रस्तुत ग्रन्थकार ने सही रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि पुराणों में वैदिक और स्मार्त वर्णाश्रम धर्मों के साथ सांख्य, योग, पांचरात्र और पाशुपत नामक शास्त्रों में प्रतिपादित धर्मों का भी, सिद्धान्तशैव आदि शैव मतों और शाक्त सिद्धान्तों का भी संक्षेप अथवा विस्तार से विवरण मिलता है। उपपुराणों में आगमिक धर्मों का सविशेष प्रतिपादन हुआ है, ऐसा हम कह सकते हैं। अठारह स्मृतिकारों, अठारह पुराणों और उपपुराणों का नाम हम प्रस्थानभेद (पृ. ४८-४९) में देख सकते हैं।

सिद्धान्तप्रकाशिकाकार ने पाशुपत, महाव्रत और कापालिक मतों को अतिमार्ग विभाग में रखकर उनका परिचय दिया है। यहाँ स्वच्छन्दतन्त्र (११.१८२-१८३) में दी गई अतिमार्ग पद की व्युत्पत्ति ध्यान देने योग्य है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार कौल-यामल और शाक्त आगम भी इसी विभाग में समाविष्ट होंगे, किन्तु हमें श्रीकण्ठप्रवर्तित श्रौत पाशुपत मत को इनसे बाहर रखना होगा। इनके मोक्षविषयक विचारों का परिचय शिवाग्रयोगी के ग्रन्थ शैवपरिभाषा (पृ.१५६-१५७) में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से दिया गया है। सिद्धान्तशैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक — इन चार प्रकार के शैवों का वर्णन

स्मृति-पुराण आदि में भी मिलता है और वामनपुराण में इन चारों मतों को चार वर्णों से जोड़ा है, किन्तु सर्वात्मशंभु सिद्धान्तशैव को छोड़कर अन्य तीन मतों का समावेश अतिमार्ग में करते हैं और बताते हैं कि सिद्धान्त शैवशास्त्र में इन तीनों मतों का प्रतिपादन पूर्वपक्ष के रूप में किया जाता है। कामिक आदि आगमों में अतिमार्ग के पाँच भेदों के रूप में किनकी गणना की गई है, हमारे लिये यह अभी भी ज्ञातव्य विषय है। इन तीन मतों के अतिरिक्त यहाँ शाक्त तन्त्र एवं कौल, यामल आदि तन्त्रों की भी प्रसंगवश चर्चा है, किन्तु उनकी चर्चा यहाँ इन तीन मतों के साथ न होकर सिद्धान्तशास्त्र के साथ की गई है।

इस प्रकार विविध शास्त्रों का परिचय देकर द्विविध सिद्धान्तशास्त्र का परिचय देने से पहले ग्रन्थकार इन सभी शास्त्रों का अनुसरण करने से प्राप्त होनेवाले विविध लोकों की चर्चा करते हुए गारुड आदि चतुर्विध मन्त्रशास्त्र की पद्धति से उपासना करने से प्राप्त होनेवाले शक्तितत्त्वाश्रित निवृत्ति आदि के चतुर्विध भुवनों का उल्लेख करते हैं। यहाँ विशेष अवधेय विषय यह है कि ग्रन्थकार ने केवल निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति भुवनों की ही चर्चा की है (पृ. ३६)। कूर्मपुराण (१.११.२६-२७) में भी इन्हीं चार शक्तियों का उल्लेख है और वहाँ बताया गया है कि इन चार शक्तियों के कारण ही परमेश्वर (भगवान् शिव) चतुर्व्यूह कहलाते हैं। पांचरात्र-संमत चार व्यूहों की चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ (पृ. ३०-३१) में और प्रस्थानभेद (पृ. ५२) में भी है। चार व्यूहवाला सिद्धान्त प्रधानत: वैष्णव आगमों में ही वर्णित है, किन्तु कूर्मपुराण में शिव को भी उक्त चार कलाओं से सम्पन्न होने के कारण चतुर्व्यूह कहा है। इस विषय में विशेष विवरण अपेक्षित है कि शान्त्यतीत कला को यहाँ क्यों छोड़ दिया गया?

प्रस्तुत ग्रन्थ में लौकिक आदि शास्त्रों के तो दो या तीन-तीन भेदों की ही चर्चा है, किन्तु मन्त्रशास्त्र के पाँच भेद परिगणित हैं। इनमें से तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात नामक ब्रह्म के चार मुखों से प्रादुर्भूत [३४]गारुड, दक्षिण, वाम और भूत तन्त्रों को अध:स्रोतस् कहा गया है। वह इसलिये कि सिद्धान्त शैव-

३४. पंचविध मन्त्रशास्त्र के विविध ग्रन्थों की नामावली हमारे लुप्ता० उपो०, पृ. ८६-९३ में देखी जा सकती है। नेत्रतन्त्र की टीका में क्षेमराज ने भूततन्त्र के प्रसंग में क्रियाकालगुणोत्तर को और तोतुल को उद्धृत किया है। प्रथम ग्रन्थ की मातृका भी उपलब्ध है।

शास्त्र का उपदेश भगवान् शिव के ईशान नामक ऊर्ध्व मुख से हुआ है। चार शास्त्रों के परिचय के बाद यहाँ शाक्त तन्त्रों का उल्लेख है और भास्करीय वेदान्त के साथ इनको जोड़ा है। कौल, यामल आदि की भी यहाँ चर्चा है। कौलशास्त्र के प्रवक्ता मत्स्येन्द्र हैं, इसका ज्ञान तो हमें अन्य प्रमाणों से भी मिल जाता है, किन्तु यामल आदि शास्त्रों के प्रवक्ता कौन हैं? यह ज्ञात नहीं होता। ग्रन्थकार का इतना अभिप्राय हमें अवश्य ज्ञात हो जाता है कि कौलशास्त्र की तरह यामल आदि शास्त्रों के प्रवक्ता भी सिद्ध पुरुष हैं।

इस प्रकार मन्त्रशास्त्र के चार विभागों का परिचय देने के बाद ग्रन्थकार पूर्ववर्णित सभी शास्त्रों की उपासना से प्राप्त होने वाले पदों का परिचय स्वच्छन्द (११.६८-७४) आदि शास्त्रों की पद्धति से देते हैं और इस प्रकरण के अन्त में शिवभेद एवं रुद्रभेद में विभक्त दशविध और अष्टादशविध सिद्धान्तशास्त्रों का विवरण देते हैं। ये सभी अठाईस आगम 'सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध हैं, इतना बताने के बाद यहाँ कहा गया है कि इनमें से प्रत्येक आगम ज्ञान, क्रिया, योग और चर्या नामक चार पादों में विभक्त हैं। इन चारों पादों के प्रतिपाद्य विषयों का भी यहाँ विवरण दिया गया है। दस शिवों तथा अठारह रुद्रों की तथा उनमें से प्रत्येक के दो-दो शिष्यों की नामावली [३५]किरणागम-विद्यापाद के दशम तन्त्रावतार पटल से जानी जा सकती है। इसके साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ का शास्त्रों का और उनके प्रतिपाद्य विषयों का परिचय देनेवाला यह भाग पूरा होता है।

सिद्धान्तप्रकाशिका (पृ.३९) में योगपाद के विषयों की चर्चा करते समय षडंग योग के छः अंगों का तथा प्रस्थानभेद (पृ.५२) में अष्टांग योग के आठ अंगों का परिगणन किया गया है। षडंग योग के विषय में की गई म०म०पी०वी० काणे की टिप्पणी की समालोचना हम "आगम और तन्त्रशास्त्र" नामक अपने ग्रन्थ (पृ.१८, टि.२) में कर चुके हैं और यह भी बता चुके हैं कि शैव-शाक्त तन्त्रों में ही नहीं, वैष्णव तन्त्रों और उपनिषदों में भी षडंग योग का विवरण नामभेद के साथ मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अनुस्मृति, तर्क अथवा ऊह के स्थान पर जप का योग के अंग के रूप में परिगणन किया गया है। बाकी सभी प्राणायाम आदि पाँच अंग सर्वत्र समान हैं। जप की योगांगता के विषय में मूल ग्रन्थ (पृ.३९)

३५. किरणागम के ये वचन लुप्ता० (भा.१, पृ. १७-१९) में भी संगृहीत हैं। अब किरणागम का विद्यापाद रोमन लिपि में सन् १९७५ में नेपोली से प्रकाशित हो चुका है।

में टिप्पणी दी गई है। तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में षडंग योग का जो प्रतिपादन किया गया है, वह इसलिये है कि यम और नियम का यहाँ दीक्षा के समय दिये जानेवाले समयों (नियमों) में समावेश कर लिया गया है। इसी तरह आसनशुद्धि तान्त्रिक वरिवस्या का आवश्यक अंग है। पूजा के प्रारंभ में ही आत्मशुद्धि, आसनशुद्धि आदि का करना अनिवार्य है। पातंजल योग के बाकी बचे पाँच अंगों के साथ अपने-अपने मत के अनुसार अनुस्मृति, तर्क, ऊह, जप आदि में से किसी एक को स्वीकार कर छः अंग स्वीकार किये जाते हैं।

आगे ग्रन्थ के अन्तिम भाग में समय-संस्कार, विशेष-संस्कार आदि से प्राप्त होनेवाले विविध पदों का विवरण देकर निर्वाण दीक्षा से प्राप्त होनेवाले [३६]परमेश्वर-साम्यरूप मोक्षपदवी का उल्लेख किया है। सद्योनिर्वाण-असद्योनिर्वाण, सबीज-निर्बीज आदि दीक्षाओं का स्वरूप बताकर कहा गया है कि इनसे त्रिविध कर्मों का नाश हो जाता है। आगे दीक्षा ग्रहण करने के बाद पालनीय नियमों के साथ विधि-निषेध की व्याख्या कर अन्त में मुक्तात्मा का स्वरूप प्रदर्शित है। यहाँ बताया गया है कि मुक्त जीव को पाँचों प्रकार के पाशों से छुटकारा मिल जाता है और उसे सर्वज्ञता आदि छः गुणों से सम्पन्न स्वरूप मिल जाता है। इतना होने पर भी उसमें परमेश्वर के समान पंचकृत्यकारिता नहीं आती, तो भी राग-द्वेष आदि दोषों के न रहने से आगे आनेवाली सृष्टि में उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। मुक्ति का प्रमुख कारण [३७]दीक्षा ही है और अनुग्रह करने की शक्ति केवल ईश्वर में ही है। दीक्षा ग्रहण कर लेने के बाद समयाचार के पालन में विकलता आने पर उसकी शुद्धि प्रायश्चित्त से, मन्त्र-द्रव्य आदि का लोप होने पर उसकी शुद्धि पवित्रारोपण से और जिन विकलताओं को हम जान नहीं पाते, अर्थात् अनजाने में जो भूल होती है, उसकी शुद्धि अन्त्येष्टि विधि से होती है।

शिवसाम्यस्वरूप मोक्ष की चर्चा अभी ऊपर आई है। शैवपरिभाषा (पृ. १५६-१५७) में इस विषय में बताया गया है कि शिवसाम्य के विषय में चार विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं। महाव्रती (कालामुख) मानते हैं कि शिवसाम्य की

---

३६. इस विषय पर आगे विचार किया जा रहा है।

३७. "सदाशिवपदं योगाच्चर्यातो वाऽथ दीक्षया। प्राप्यते चित्तभेदेन मोक्षो वाऽथ चतुष्टयात्।।" (विद्या० २६.६३) मतंगपारमेश्वर के इस वचन में दीक्षा के अतिरिक्त ज्ञान (चित्तभेद), योग और चर्या की भी मोक्षोपायता वर्णित है।

उत्पत्ति होती है। मुक्तावस्था में सर्वज्ञता आदि गुणों की उत्पत्ति के कारण जीव शिव के समान बन जाता है। इस तरह से यहाँ शिव के गुणों के सदृश गुणों की उत्पत्ति से जीव शिवसाम्य को प्राप्त करता है। पाशुपतों का मानना है कि मुक्त पुरुष में शिव के इन गुणों की संक्रान्ति उसी प्रकार होती है, जैसे कि कस्तूरी की सुगन्ध से उसके सम्पर्क में आये वस्त्र सुवासित हो उठते हैं। कापालिकों का मानना है कि मुक्त जीव में शिव के गुण उसी तरह से समाविष्ट हो जाते हैं, जैसे कि मनुष्य के शरीर में पिशाच आदि का आवेश होता है। अन्य (सिद्धान्त) शैवों के मत के अनुसार मुक्त जीव में इन गुणों की अभिव्यक्ति होती है। शिव के समान जीव में भी सर्वज्ञता आदि गुण विद्यमान हैं, किन्तु संसारदशा में आणव आदि मलों से आवृत होने के कारण इनकी प्रतीति नहीं होती। मुक्तिदशा में इन मलों का अपसारण हो जाने से ये गुण अभिव्यक्त हो उठते हैं। मोक्षकारिका, परमोक्षनिरासकारिका और इनके व्याख्यानों में भी उत्पत्ति, संक्रान्ति आदि पक्षों को देखा जा सकता है।

वर्तमान ग्रन्थ के अन्त (पृ. ४३-४४) में भी आणव, मायीय आदि पाँच पाशों से विमुक्ति के साथ षाड्गुण्यस्वरूप की प्राप्ति को ही मुक्ति बताया गया है। यह प्राप्ति भूली हुई वस्तु के पुनः मिल जाने के समान है। शिवस्वरूप की प्राप्ति हो जाने पर भी द्वैतवादी सिद्धान्तशैव मत में शिव से मुक्त जीव की भिन्नता इस रूप में बनी रहती है कि उसमें शिव के समान सृष्टि आदि पाँच कृत्यों के सम्पादन की सामर्थ्य नहीं आती, तो भी राग-द्वेष आदि दोषों के विगलित हो जाने से उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह आवागमनरूप संसारचक्र से मुक्त हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पाशुपत मत के प्रसंग में संक्रान्ति पक्ष का उल्लेख अवश्य किया है, किन्तु महाव्रत और कापालिक शास्त्र के प्रसंग में उत्पत्ति और आवेश पक्ष का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। शैवपरिभाषाकार ने पूर्वपक्ष के रूप में इन चारों मतों को उपस्थापित किया है, बाद में इन सभी का एक-एक कर खण्डन कर दिया है और अन्त में शिवाद्वयवाद की प्रतिष्ठा की है (पृ. १५७-१६४), जो कि शिवज्ञानबोध के आधार पर विकसित दक्षिण के सिद्धान्तशैवागम का प्रतिनिधित्व करता है। शैवपरिभाषाकार शिवाग्रयोगी शिवज्ञानबोध के प्रसिद्ध भाष्यकार हैं।

शिवज्ञानबोध के बारह सूत्र (श्लोक) रौरवागम से संगृहीत माने जाते हैं, किन्तु [३८]पण्डित एन० आर० भट्ट का कहना है कि अब तक ये श्लोक रौरवागम में उपलब्ध नहीं हुए हैं। २८ सिद्धान्तशैवागम मूलत: द्वैतवाद के प्रतिपादक हैं। अघोरशिवाचार्य पर्यन्त सभी शैवाचार्य उनकी द्वैतपरक व्याख्या करते हैं। जयरथ शैवागमों को द्वैतवादी और रुद्रागमों को द्वैताद्वैतवादी मानते हैं। ऐसा लगता है कि शिवज्ञानबोध के आधार पर विकसित हुआ दक्षिण का सिद्धान्तशैवागम श्रीकण्ठभाष्य आदि के प्रभाव से अद्वैतोन्मुख होता गया, किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि शिवज्ञानबोध का अनुसरण करते हुए भी उमापति शिवाचार्य अपने संस्कृत ग्रन्थ शतरत्नसंग्रह में द्वैतवाद का ही प्रतिपादन करते हैं।

हमने अनेक जगह लिखा है कि सिद्धान्तशैवागम को मूलत: दक्षिण का नहीं माना जा सकता। २८ शैवागमों की प्रादुर्भावस्थली पर अभी गवेषणा अपेक्षित है, किन्तु उग्रज्योति से लेकर नारायणकण्ठ के पुत्र रामकण्ठ पर्यन्त सभी भाष्यकार अथवा व्याख्याकार आचार्य कश्मीरी हैं और इन्होंने आगमों की द्वैतपरक व्याख्या की है। आचार्य [३९]अभिनवगुप्त भी इससे सहमत हैं। धाराधिपति भोज के तत्त्वप्रकाश के व्याख्याकार कुमारदेव ने इसकी अद्वैतपरक व्याख्या की है। [४०]अघोरशिवाचार्य अपनी व्याख्या में इसका उल्लेख करते हैं। संभव है, यहीं से द्वैतवादी शैवागम अद्वैतोन्मुख होता गया हो। इस पर अभी विशेष गवेषणा अपेक्षित है।

पांडिचेरी स्थित फ्रेंच शोध संस्थान की तालपत्र मातृका (सं. १६८) के पाठों का संकलन करने के लिये हमने इस ग्रन्थ का एक संशोधित प्रूफ वहाँ भेजा था। वह प्रूफ कुछ विलंब से हमें वापस मिला। उससे प्रस्तुत संस्करण के मूल में स्थापित पाठों की ही संपुष्टि होती है। उसके साथ ही हमें जो नवीन सूचना मिली, उससे हम अपने विज्ञ पाठकों को भी परिचित करा देना चाहते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक श्री आर० दामोदरन् द्वारा सम्पादित होकर महाराज सरफोजी सरस्वती महल लाइब्रेरी,

---

३८. फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पांडिचेरी द्वारा सन् १९७३ में प्रकाशित रौरवागम के द्वितीय भाग का संस्कृत उपोद्घात (पृ. २०-२१) देखिये।

३९. "आगमेषु द्वैतवादमपास्य ....." (ई० प्र० वि० वि०, भा. ३, पृ. ४०५)।

४०. "अद्वैतवासनाविष्टै:" (अष्टप्रकरण, पृ. ६)।

तंजोर की शोधपत्रिका के ३३ वें भाग में प्रकाशित हो चुकी है। डॉ० जी० सी० केण्डदमठ की सहायता से इस पुस्तक की जिराक्स प्रति हमें काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के सयाजीराव गायकवाड़ पुस्तकालय से मिल गई। इसकी प्रस्तावना में ग्रन्थकार के विषय में तो कोई जानकारी नहीं मिली, किन्तु इतना पता चला कि इस ग्रन्थ का तमिल भाषा में अनुवाद हुआ था और वह मद्रास और श्रीलंका से प्रकाशित भी हो चुका है। तमिल शैवों में यह ग्रन्थ प्रारंभिक पाठ्यपुस्तक के रूप में संमानित है। वहाँ इसको देह, तत्त्व, अध्वा, आत्मा, बन्ध, शास्त्र और दीक्षा नामक सात प्रकरणों में बाँटा गया है। इस ग्रन्थ की सूचना देने और पाठों की परीक्षा करने के लिये हम किरणागम की रामकण्ठ द्वितीय की टीका पर कार्यरत श्री डोमिनिक गूडाल के और उनको तालपत्र प्रति से पाठ-संकलन के लिये प्रेरित करने वाले फ्रेंच शोध संस्थान के अध्यक्ष डॉ० एफ० ग्रीमल के प्रति विशेष आभारी हैं।

अन्त में हम सबसे पहले पांडिचेरी के फ्रेंच शोध संस्थान के सभी अधिकारियों का और विशेष कर वहाँ की ग्रन्थाध्यक्ष सुश्री अनुरूपा नायक का आभार स्वीकार करते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ के हस्तलेख हमें सुलभ कराये। प्रेस कापी बनाने, पाठ संकलन करने जैसे कार्यों में काशी जंगमवाड़ी मठ में शोधरत एवं अध्ययनरत सर्वश्री सिद्धराम देव सुरकोड, सिद्धराम देव हिप्परगी और सिद्धराम शिवाचार्य हरनाळ ने सहायता की। डॉ० रमा घोष के प्राथमिक प्रयत्न और डॉ० जी० सी० केण्डदमठ द्वारा किये गये पत्र-व्यवहार से हमें उक्त हस्तलेख प्राप्त हुए। इस ग्रन्थ को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने में हमें पं. श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय तथा श्री नरहरि पुरुषोत्तम रंगप्पा की सहायता प्राप्त हुई। शिव-शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस के श्री चिदानन्द ओ० हिरेमठ (कसगी) तथा श्री राजशेखर जी० हिरेमठ ने आकर्षक रूप में अक्षर-संयोजन किया। इन सबका हम आभार स्वीकार करते हैं, धन्यवाद से इन्हें अलंकृत करते हैं।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी
महाशिवरात्रि, संवत् २०५२

विद्वद्वशंवद
व्रजवल्लभ द्विवेदी
निदेशक



श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान द्वारा संचालित

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

डी० ३५/७७ जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१ (उ०प्र०)

संस्थापक

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु
डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी महाराज

संरक्षक

प्रो० वि० वेङ्कटाचलम्
पूर्व कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

निदेशक

पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

परामर्शदात्री समिति

१. प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, श्रीनिकेतन, एन-१६/४३ पत्रकार नगर, विनायका, वाराणसी-१०
२. डॉ० एस० बहुलकर, निदेशक दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।
३. प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय, बी० ३०/२२७ नगवा, वाराणसी-५
४. डॉ० सी० एस० कपाले, 'शिवरत्न' १०-२/३६ एस० बी० कालेज रोड, गुलबर्गा, कर्नाटक।
५. डॉ० एम० शिवकुमार स्वामी जी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, बंगलोर विश्वविद्यालय, बंगलोर, कर्नाटक।
६. डॉ० मल्लिकार्जुन परड्डी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक।
७. डॉ० एस० डी० पसारकर, प्राध्यापक, संगमेश्वर कालेज, सोलापुर, महाराष्ट्र।
८. पं० जी० उमापति शास्त्री, धर्मस्थल, कर्नाटक।
९. डॉ० रमा घोष, दर्शनाध्यापक आर्यमहिला महाविद्यालय, चेतगंज, वाराणसी।

विषयानुक्रमणी

परिशिष्टभागः

***

सिद्धान्तप्रकाशिका

सर्वात्मशम्भुना विरचिता

मङ्गलाचरणम्

[१]अवर्णविग्रहं देवं [१]वर्णविग्रहवर्जितम् ।
[१]वर्णविग्रहवक्तारं [२]नौम्यहं स्तौमि संश्रये ।।
चराचरात्मकं विश्वमोतं प्रोतं च सर्वतः ।
पशुपाशभिदा येन नमस्तस्मै पुरद्विषे ।।

---

[1]अवर्ण (अकार) शरीर, वर्ण (नाम-रूप) से संयुक्त शरीर से वर्जित, वर्ण (आदि क्षान्त वर्णमाला) के स्वरूप का उपदेश करनेवाले देव (भगवान् शिव) को मैं प्रणाम करता हूँ, उनकी स्तुति करता हूँ, उनकी शरण में जाता हूँ।।

जिसके साथ पशु और पाश के भेद से भिन्न यह सारा चराचरात्मक (स्थावर-जंगम) विश्व (संसार) ओतप्रोत है, अनुस्यूत है, जुड़ा हुआ है, त्रिपुर[2] का नाश करनेवाले उस भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।

---

१. अखण्ड ··· खण्ड ··· खण्ड–ख.। २. नमामि–क.।

1. "अ इति ब्रह्म" (२.३.८) और "अकारो वै सर्वा वाक्" (२.३.६) ऐतरेय आरण्यक के इन वचनों में, "अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः" संकेतपद्धति के इस वचन में, "अकारो मुखं सर्वधर्माणाम्" (१.२.१) हेवज्रतन्त्र के इस वचन में, "अकारः सर्ववर्णाग्र्यः" (श्लो. २८) नामसंगीति के इस वचन में और "अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थो वर्गनायकः। अत एव समुद्भूताः सर्वमन्त्रास्तु देहिनाम्।।" (९.८) तथा–"यः कश्चित् प्रसरो वाचां जन्तूनां प्रतिपद्यते। स सर्वो मन्त्ररूपो हि तस्मादेव प्रजायते।।" (९.१०) वसन्ततिलक के इन वचनों में अकार को ब्रह्म, सभी वर्णों में श्रेष्ठ तथा समस्त वाङ्मय का मूल कारण बताया गया है। वसन्ततिलक के टीकाकार ने चतुर्दश विद्यास्थान तथा पंचविध विद्यास्थानों का परिचय देकर कहा है कि इन सबकी उत्पत्ति अकार से हुई है (पृ. ७२)। इसीलिये यहाँ भगवान् शिव को अवर्णविग्रह (शरीर) बताया गया है।
2. भगवान् शिव के द्वारा त्रिपुरदाह की कथा शिवपुराण की द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्ध-खंड के प्रारंभ के बारह अध्यायों में वर्णित है।

शरीरमात्मा च

इह तावज्जातिकुलाद्यभिमानास्पदमिदं स्थूलदेहं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समवाय:। तत्र प्राक्तनपुण्यपापानुकूलं ब्राह्मणादिवर्णांश्च रूपश्रियौ इन्द्रियपाटवमपि[१] बिभ्रन्तो नियतायुषो नियतभोगाश्च भवन्ति भोक्तार आत्मान:। एतेषां भोग-[२]परिकरीभूतसृष्टिमारभ्य[३] कलातत्त्वान्तानि त्रिंशताऽऽरब्धानि [४]आत्मन्यात्मनि पृथक् पृथक् सूक्ष्मकर्मणा प्राप्तायुषां पूर्वं शरीरं विहाय तृणजलू[५]कवदाश्रयिष्यते। तदिदं शरीरं तेन कृतानां पुण्यपापानामाश्रयम्। आत्मा शरीरादन्य:, ज्ञानक्रियारूप:, नित्य:, अमूर्त:, व्यापकश्च। आणव-कार्म-मायीय-बैन्दव-रोधशक्त्यात्मकपाशपञ्चकबद्ध: संसारी पुरुष:।

इस संसार में जीवात्मा के जाति, कुल आदि के अभिमान का आधार यह स्थूल शरीर पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश के समवाय (समाहार) से बना हुआ है। अपने पूर्व जन्म के पुण्य और पाप के अनुसार ही जीवात्मा [1]ब्राह्मण आदि वर्णों को, रूप और कान्ति से युक्त शरीर को, पटुतर (तीव्रसामर्थ्य से संयुक्त) इन्द्रियों को, नियत आयु और नियत भोगों को प्राप्त करता है। इन जीवात्माओं के भोगों के साधन के रूप में महाभूतों से लेकर कलापर्यन्त तीस तत्त्वों से आरब्ध एक [2]सूक्ष्म शरीर प्रत्येक जीवात्मा के विभिन्न स्थूल शरीरों के लिये निर्धारित है। यह सूक्ष्म शरीर ही कर्मानुसार एक स्थूल शरीर की आयु के समाप्त हो जाने पर उस शरीर को छोड़कर नया शरीर उसी प्रकार धारण करता है, जैसे कि तृण में रहनेवाला कीड़ा (या तितली) एक तृण को छोड़कर दूसरे तृण का सहारा ले लेता है। जीवात्मा का यह सूक्ष्म शरीर ही उसके द्वारा किये गये पुण्य और पाप कर्मों को ढोता रहता है। आत्मा इन दोनों प्रकार के शरीरों से भिन्न ज्ञान और क्रियास्वरूप, नित्य, अमूर्त और व्यापक है। यह

---

१. 'अपि' नास्ति–ख.। २. 'भूत' नास्ति–क. परिकरभूत–ख.। ३. मारभ्याह पृथ्वीतत्त्वमारभ्य–क.ग.। ४. 'आत्मनि' नास्ति–ख.। ५. जम्बूक–क.ग.।

1. "शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते" (६.४१) इत्यादि श्लोकों में श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही विषय वर्णित है।

2. सांख्यकारिका के "पूर्वोत्पन्नमसक्तम्" (का. ४०) इत्यादि श्लोक में सूक्ष्म शरीर का स्वरूप वर्णित है। शैवागमों में पुर्यष्टक के नाम से प्रसिद्ध सूक्ष्म शरीर का स्वरूप भोजदेवकृत तत्त्वप्रकाश की कुमारदेवकृत टीका (पृ. ३०) में देखना चाहिये।

कार्यदशकम्

अस्य भोगपरिकरीभूतसूक्ष्मभूततत्त्वानि कानीति चेत्, पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशतत्त्वानि कथितानि। इमानि पञ्चभूतानि। एतेषां कारणं तन्मात्रपञ्चकं किमिति चेत्, गन्धतत्त्वं रसतत्त्वं[१] रूपतत्त्वं[१] स्पर्शतत्त्वं[१] शब्दतत्त्वं[१] चेति। एतद्दशकं कार्यमित्युच्यते।

करणदशकम्

वाक्पादपाणिपायूपस्थानीति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। एतेषां व्यापारा वचनगमनादानविसर्गानन्दाः। श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानीति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। एतेषां व्यापाराः

आणव, कार्म, मायीय, बैन्दव और रोधशक्ति नामक [1]पाँच प्रकार के पाशों से बँधा हुआ है। यह पुरुष (जीवात्मा) इन पाशों से बँधे रहने के कारण संसारी कहलाता है।

जिज्ञासा होती है कि इस जीवात्मा के भोग के साधनीभूत, सूक्ष्म पंच-तन्मात्राओं से उत्पन्न स्थूल पंचमहाभूत कौन-कौन से हैं? इसका समाधान यह है कि पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक स्थूल तत्त्वों को ही पंचमहाभूत कहा जाता है। पुनः प्रश्न उठता है कि इन पाँच महाभूतों की कारणीभूत पाँच तन्मात्राएँ कौन-कौन सी हैं? उत्तर है कि गन्धतत्त्व, रसतत्त्व, रूपतत्त्व, स्पर्शतत्त्व और शब्दतत्त्व ही ये पाँच तन्मात्राएँ हैं। पाँच तन्मात्राएँ और पाँच महाभूत इन दस तत्त्वों को [2]कार्य कहा जाता है।

वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। वचन, गमन, आदान, विसर्ग और आनन्द—ये इनके व्यापार हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इनके विषय हैं। वाक् आदि पाँच और श्रोत्र आदि पाँच—ये दस करण कहलाते हैं।

---

१. *'तत्त्वं' नास्ति—ख.।*

1. द्वैतवादी सिद्धान्तशैवागम की पद्धति से यहाँ सर्वत्र पाँच पाशों का वर्णन है। तत्त्वप्रकाश के पाँचवें श्लोक में भी पाँच ही पाश वर्णित हैं, किन्तु वहाँ कुमारदेव ने त्रिविध पाशों की भी चर्चा की है। तत्त्वप्रकाश के सत्रहवें श्लोक में चार ही पाशों की चर्चा है। यहाँ बिन्दु (महामाया) को पाश नहीं माना गया। मृगेन्द्रागम (वि. २.७) में भी चार ही पाश स्वीकृत हैं। रोधशक्ति की भी पाशों में गणना न कर तीन पाशों को मान्यता दी गई है। इस विषय को विस्तार से समझने के लिये लुप्तागमसंग्रह, द्वितीय भाग का संस्कृत उपोद्घात (पृ.१३६-१५१) देखना चाहिये।
2. कार्य और करण की व्यवस्था सांख्य-दर्शन में भी इससे मिलती-जुलती है। देखिये — सां० का० ३२-३३

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धग्राहकाः। एतेषां वागादिपञ्चानां श्रोत्रादिपञ्चानां च करणमित्युच्यते (ति संज्ञा)।

त्रीण्यन्तःकरणानि

मनश्चाहङ्कारश्च बुद्धिश्चेत्येतत् त्रितयं श्रोत्रादीन्द्रियवदस्मात् शरीरात्तु बहिर्निर्गत्य व्यापारमात्राश्रयस्य शरीरस्यान्तरवकाशे स्थित्वा क्रियाप्रवर्तकत्वादन्तःकरणमित्येतेषां त्रयाणां नाम। अर्थानां सङ्कल्पनं च श्रोत्रादीन्द्रियाणां बाह्यविषयेषु प्रवर्तनं च मनसो वृत्तिः। अभिमानसंकल्पनं च प्राणादिवायूनां प्रेरणं चाहङ्कारवृत्तिः। अध्यवसायो बुद्धिवृत्तिः। एतद् रजतमेव, न शुक्तिरिति निश्चयोऽध्यवसायः। इति पूर्वमुक्तानि त्रयोविंशतितत्त्वानि।

---

[1]मन, अहंकार और बुद्धि—ये तीन अन्तःकरण हैं। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ शरीर से बाहर की ओर जाकर अपने-अपने विषयों को ग्रहण करती हैं, किन्तु ये तीन इन्द्रियाँ शरीर के भीतर ही रहती हुई व्यक्ति को बाह्य इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषयों में प्रवृत्त अथवा निवृत्त कराती हैं। इसलिये इन तीनों को अन्तःकरण कहा जाता है। संकल्प मन का व्यापार है। यह बाह्य विषयों की ओर श्रोत्र आदि इन्द्रियों की प्रवृत्ति कराता है। अहंकार का व्यापार अभिमान करना है। साथ ही यह [2]प्राण आदि पाँच वायुओं को प्रेरित करता है। अध्यवसाय (निश्चय) बुद्धि का व्यापार है। यह रजत (चाँदी) ही है, शुक्ति (सीप) नहीं, इस प्रकार का निश्चयात्मक ज्ञान ही अध्यवसाय कहलाता है। इस तरह से पूर्वनिर्दिष्ट तत्त्वों के साथ पृथिवी से लेकर बुद्धिपर्यन्त ये तेईस तत्त्व हैं।

---

1. चित्त को मिलाकर वेदान्त-दर्शन में अन्तःकरण चार माने गये हैं। क्रम-दर्शन में अहंकार का स्थान बुद्धि के ऊपर माना गया है। विज्ञानभैरव (श्लो.८८) की हमारी हिन्दी व्याख्या में उद्धृत वामननाथ के अद्वयसम्पत्तिवार्त्तिक में इसका विवरण देखा जा सकता है। (पृ. १००-१०१)
2. "सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च" (का.२९) सां० का० के इस वचन में प्राण आदि पाँच वायुओं को अन्तःकरणों की सामान्य वृत्ति बताया गया है, किन्तु शैवागम इनको अहंकार की संरम्भनामक वृत्ति का कार्य बताते हैं। देखिये—"संरम्भादस्य चेष्टन्ते शारीराः पञ्च वायवः" (मृगेन्द्रागम, विद्यापाद, ११.२०) तथा—"पञ्चकर्मकृतो वायोर्जीवनाय प्रवर्तकः। संरम्भोऽहङ्कृतेर्वृत्तिः" (भोगकारिका, श्लो.३३)। प्रस्तुत स्थल पर शैवागमों का ही अनुसरण किया गया है।

अहङ्कारसृष्टिः

एतेष्वध्यवसायकारणभूताद् बुद्धितत्त्वात् सात्त्विकराजसतामसभेदेन भिन्नोऽहङ्कारो जायते। अत्र सात्त्विकादहङ्कारान्मनश्च श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि (च) जायन्ते। [१]अत्र राजसाऽहङ्काराद् वागादिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि जायन्ते। अत्र तामसाऽहङ्काराद् गन्धादितन्मात्रपञ्चकं जातम्। एतस्मात् तन्मात्रपञ्चकाद् [२]भूतानि पञ्च जातानि। धारणं च समूहीकरणं च दाहकत्वं चावयवघटनकरणं [३]चेतरभूतचतुष्टयस्यावकाशदानं च पञ्चभूतानां वृत्तिः।

इनमें से अध्यवसाय के कारणीभूत बुद्धितत्त्व से सात्त्विक, राजस और तामस भेद से भिन्न अहंकार की उत्पत्ति होती है। यहाँ [1]सात्त्विक अहंकार से मन और श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। राजस अहंकार से वाक् आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा तामस अहंकार से गन्ध आदि पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। बाद में पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। [2]धारण करना, इकट्ठा करना, जलाना, अवयवों को आपस में जोड़ना तथा अन्य चार भूतों को अवकाश प्रदान करना—ये क्रमशः पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों के कार्य हैं।

---

१. 'अत्र⋯जायन्ते' नास्ति–ग.। २. पञ्च भूतानि–ख.। ३. चेतन–क.।

1. "सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्। भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्॥" (का. २५) सां० का० के इस वचन से यहाँ का प्रतिपादन भिन्न है। इस विषय में विभिन्न पक्षों का निरूपण त० प्र० की कुमारदेव और अघोरशिव की व्याख्या के आधार पर हमने अष्टप्रकरण के उपोद्घात (पृ. ३७-३८) में किया है। यहाँ यह प्रसंग विशेष रूप से अवधेय है कि शैवागमों और सां० का० में सात्त्विक आदि तीनों के प्राचीन नामों में अन्तर है। सां० का० में सात्त्विक को वैकारिक और राजस को तैजस कहा गया है, जब कि शैवागमों में सात्त्विक को तैजस और राजस को वैकारिक कहा गया है। अ० प्र० उ० का उक्त स्थल देखिये। वहाँ हमें अभिनवगुप्त की अपेक्षा खेटपाल (सद्योज्योति शिवाचार्य) का मत उचित प्रतीत होता है।
2. त० प्र० (श्लो. ६२), त० सं० (श्लो. २), भो० का० (श्लो. ६) इत्यादि में तथा इनकी टीकाओं में भी इस विषय का विस्तार देखा जा सकता है।

गुणविवेकः

अत्र पृथ्व्याः शब्दस्पर्शरूपरसाः सामान्यगुणाः, [१]गन्धस्त्वसामान्यगुणः। अपां शब्दस्पर्शरूपाणि सामान्यगुणाः, रसस्त्वसामान्यगुणः। तेजसः शब्दस्पर्शौ सामान्यगुणौ, रूपं चासामान्यगुणः। [२]वायोः शब्दः सामान्यगुणः, स्पर्शस्त्वसामान्यगुणः। आकाशस्य शब्द एक एव गुणः। अयं शब्दः प्रतिध्वन्यात्मकः, वर्णात्मको न भवति।

गुणतत्त्वम्

द्वाविंशतेः परस्य बुद्धितत्त्वस्य कारणं गुणतत्त्वमिति च सत्त्वमिति रज इति तम इति [३]चाभिहितम्, सुखदुःखमोहानां च कारणं भवति। अस्य गुणतत्त्वस्य

इनमें से [1]पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये सामान्य गुण हैं और इसका असामान्य गुण गन्ध है। जल के शब्द, स्पर्श और रूप सामान्य गुण तथा रस असामान्य गुण है। तेज के शब्द और स्पर्श सामान्य गुण तथा रूप असामान्य गुण हैं। वायु का शब्द सामान्य गुण और स्पर्श असामान्य गुण है। आकाश में केवल शब्द गुण ही है। यह शब्द[2] प्रतिध्वनिस्वरूप है, वर्णात्मक नहीं।

ऊपर बताये गये (पृथ्वी से अहंकारपर्यन्त) बाईस तत्त्वों के ऊपर स्थित २३वें बुद्धितत्त्व की उत्पत्ति सत्त्व, रज और तम नाम के तीन [3]गुणों से मानी गई है।

---

१. 'गन्धः··· गुणः' नास्ति–ख.ग.। २. 'वायोः··· गुणः' नास्ति–क.। ३. च त्रिधा भूयात्–क., चाहितं त्रिधा भूयात्–ग.।

1. योगिनीहृदय (२.३०-३६) तथा उसकी टीका दीपिका में यही सिद्धान्त मान्य है। इस विषय में सां० का० तथा शैवागमों में विभिन्न मत हैं। देखिये–अ० प्र० उ०, पृ.३९
2. अघोर शिवाचार्य ने अ० प्र० स्थित ग्रन्थों की अपनी व्याख्याओं में इस विषय पर विचार किया है और कहा है कि इस विषय पर हमने मृगेन्द्रवृत्ति की दीपिका में विस्तार से विचार किया है। (पृ.११६, २०६)।
3. श्रीमद्भागवत महापुराण (११.१९.१४) में सांख्यसंमत पचीस तत्त्वों के साथ तीन गुणों को मिलाकर तत्त्वों की संख्या २८ मानी है, अर्थात् तीन गुणों का स्वतन्त्र अस्तित्व वहाँ स्वीकार्य है। इस विषय पर हमने तन्त्रयात्रा (पृ.३-१३) में प्रकाशित "कति तत्त्वानि" शीर्षक निबन्ध में विचार किया है। (वहाँ हमने विभिन्न ग्रन्थों के प्रमाण से यह भी बताया है कि भूत, धातु, प्रकृति, तत्त्व–ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।) उसी पद्धति से यहाँ भी गुणों को स्वतन्त्र तत्त्व माना गया है, किन्तु "त्रयो गुणास्तथाप्येकं तत्त्वम्" (वि० १०-२१) इस मृगेन्द्रवचन के अनुसार ये तीन पृथक् तत्त्व न होकर एक ही हैं। सांख्य-दर्शन तथा

कारणं प्रकृतितत्त्वम्। गुणतत्त्वं चतुर्विंशतितत्त्वम्। प्रकृतितत्त्वं पञ्चविंशतितत्त्वम्। एतस्मिन्नुभयस्मिन् स्थितत्वे सति प्रकृतितत्त्वस्य कार्यं गुणतत्त्वमिति प्रतिपादितम्। गुणतत्त्वस्य कार्यं सुखदुःखमोहहेतुत्वं च, स्वव्यतिरिक्तार्वाग्बुद्ध्यादित्रयोविंशतितत्त्वानां क्रमेण [१]कारणत्वं च। पृथिवीतत्त्वमारभ्य प्रकृतितत्त्वान्तं पञ्चविंशतेरशुद्धाध्वेति नाम।

मिश्राध्वविवेकः

इत ऊर्ध्वं रागतत्त्वम्। अस्य वृत्तिः प्रकृतिजातवस्तूनामात्मने[२] प्ररोचनम्। अत ऊर्ध्वं नियतितत्त्वम्। अस्य वृत्तिरात्मना[३] स्वेनैव कृतानि कर्माण्यात्मनैव भोक्तव्यानीति नियमनम्। इत ऊर्ध्वं कालतत्त्वम्। अस्य वृत्तिर्दीर्घकालं भुञ्जते, स्वल्पकालं भुञ्जत इति पुरुषस्य भोगपरिच्छेदः। अतः परं विद्यातत्त्वम्। अस्य वृत्तिर्विषयोपरक्तां बुद्धिं

ये तीन गुण क्रमशः सुख, दुःख और मोह के भी कारण हैं। इस गुणतत्त्व का कारण प्रकृतितत्त्व है। इस प्रकार गुणतत्त्व चौबीसवाँ और प्रकृति पचीसवाँ तत्त्व है। इन दोनों में गुणतत्त्व प्रकृतितत्त्व का कार्य माना जाता है। यह गुणतत्त्व सुख, दुःख और मोह को उत्पन्न करता है और अपने से भिन्न नीचे के बुद्धि आदि तेईस तत्त्वों का भी कारण यही है। पृथिवीतत्त्व से लेकर प्रकृतितत्त्व पर्यन्त पचीस तत्त्वों की गणना अशुद्धाध्वा में होती है।

इनके ऊपर [1]रागतत्त्व स्थित है। प्रकृति से उत्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि जगाना इसकी वृत्ति (कार्य) मानी गई है। इसके ऊपर नियतितत्त्व स्थित है। इसकी वृत्ति है नियमन, अर्थात् प्रत्येक आत्मा के द्वारा किये गये कर्मों का फल उसीको भोगना है, किसी दूसरे को नहीं, इसकी व्यवस्था करना नियतितत्त्व का कार्य है। इसके ऊपर

---

१. कारणं-ख.। २. त्मनि-ख.ग.। ३. रात्मस्थेन-क.ख.।

अन्यत्र भी इनकी पृथक् तत्त्व के रूप में गणना न होकर प्रकृति में ही इनका अन्तर्भाव किया गया है और बुद्धितत्त्व की उत्पत्ति त्रिगुणात्मक प्रकृति से मानी गई है, गुणों से नहीं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इनको पृथक् तत्त्व माना गया है और ३६ तत्त्वों की संख्या में वृद्धि न हो, इसके लिये पुरुष (आत्मा) की तत्त्वों में गणना नहीं की गई। उपलब्ध आगमों में गुणत्रय का पृथक् वर्णन अवश्य मिलता है, किन्तु उनकी पृथक् तत्त्व के रूप में मान्यता कहीं देखने को नहीं मिलती। ग्रन्थकार के इस प्रतिपादन का आधार अपेक्षित है।

1. कला से लेकर राग तत्त्व के क्रम के विषय में विभिन्न आगमों की विभिन्न मान्यताएँ हैं। अभिनवगुप्त ने अपने महान् ग्रन्थ तन्त्रालोक (९.४०-४८) में इन मतों की चर्चा की है।

पुरुषो गृह्णातीति कारणभूतत्वम्। अस्मात् परं कलातत्त्वम्। अस्य वृत्तिरात्मनोऽनादि-भूतताम्रकालिकावत् सहजमलशक्तेरेकदेशं [१]प्रसाद्यात्मस्वरूपस्य प्रकाशनम्। अस्य कारणं मायातत्त्वम्।

अथ पूर्वोक्ततत्त्वोत्पत्तिक्रमः। मायातत्त्वे [२]कलातत्त्व[३]-विद्यातत्त्व-कालतत्त्व-नियतितत्त्व-रागतत्त्वानि(नां) पञ्चकमुच्यते। एतेनावृतस्य [४]भोक्त्रात्मनः पुंस्त्वमिति, मलसद्भावात् पुरुषतत्त्वमिति व्यपदेशः। आत्मनो न जडरूपत्वम्। रागतत्त्वमारभ्य कलातत्त्वान्तानि पञ्च तत्त्वानि 'मिश्राध्वा' इत्युच्यते।

कालतत्त्व स्थित है। आत्मा लम्बे समय तक अथवा थोड़े समय तक फलभोग करेगा, इसका आकलन इसीका व्यापार है। इसके ऊपर विद्यातत्त्व विद्यमान है। विषय से उपरोक्त बुद्धि के व्यापार को पुरुष में संक्रान्त कर देना, इसकी वृत्ति है। इसके ऊपर कलातत्त्व की स्थिति मानी गई है। ताम्र (ताँबा) धातु में स्थित कालिमा के समान आत्मा में अनादिकाल से चली आ रही सहज मलशक्ति के एक देश को स्वच्छ बनाकर आत्मस्वरूप को प्रकाशित करना इसकी वृत्ति है। इस कलातत्त्व का कारण मायातत्त्व है।

ऊपर बताये गये तत्त्वों का उत्पत्ति-क्रम इस प्रकार है—मायातत्त्व से क्रमशः उत्पन्न कलातत्त्व, विद्यातत्त्व, कालतत्त्व, नियतितत्त्व और रागतत्त्व [1]पंचकंचुक के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पाँच कंचुकों से ढकी हुई और मलों से आवृत जीवात्मा ही पुरुषतत्त्व कहलाती है। यह आत्मा जड़ नहीं है। रागतत्त्व से लेकर कलातत्त्व पर्यन्त पाँच तत्त्व [2]मिश्राध्वा के नाम से जाने जाते हैं।

---

१. प्रसार्या-क.ग.। २. 'काल-नियति-कला-विद्या-राग' इति क्रमः-ग.। ३. 'तत्त्व' कुत्रापि नास्ति-ख.। ४. बाह्या-क.।

1. तन्त्रालोक (९.२०४) में कंचुकों की संख्या छः मानी गई है। परमार्थसार (श्लो. १७) में भी यही मत मान्य है। सिद्धान्तशैवागम पाँच कंचुकों को ही मान्यता देते हैं। इनके क्रम के विषय में ऊपर की टिप्पणी में चर्चा हो चुकी है।
2. मिश्राध्वा (शुद्धाशुद्धाध्वा) में यहाँ पाँच तत्त्व परिगणित हैं और माया को अशुद्धाध्वा बताया है। अन्यत्र माया और पुरुष को लेकर मिश्राध्वा में सात तत्त्व मान्य हैं।

सूक्ष्मदेहः

एतान्येकत्रिंशत् तत्त्वान्यात्मन्यात्मनि प्रत्येकं सूक्ष्मदेहानि भवन्ति। एतेषां तुर्याणां भुवनजशरीराणामाश्रयाणां भुवनानामाश्रयाणि[१] सर्वात्मनां साधारणानि त्रिंशत् तत्त्वानि। एतेषां [२]सर्वेषां कारणमशुद्धमायातत्त्वम्। इत्थं(दं) मायातत्त्वं नित्यं व्यापकं [३]समस्तात्मकर्माभिसंबद्धं स्ववृत्तिद्वारेण ज्ञान-क्रिया-प्रकाशीभवदपि मोहकम्।

शुद्धविद्येश्वरतत्त्वे

इतः परं द्वात्रिंशकं शुद्धविद्यातत्त्वम्। ततः परमीश्वरतत्त्वं त्रयस्त्रिंशकम्। अस्मिन् शुद्धविद्यातत्त्वे सप्तकोटिमहामन्त्राः, कामिकाद्यष्टाविंशतिसंहिताश्च, नन्द्या-

---

ये [1]इकतीस तत्त्व मिलकर प्रत्येक आत्मा के साथ सूक्ष्म देह के रूप में विद्यमान रहते हैं। ऊपर वर्णित चतुर्थ जीवगण के, विभिन्न भुवनों में उत्पन्न उनके विभिन्न शरीरों के, उनके आश्रयभूत भुवनों के आश्रयभूत ये [1]तीस तत्त्व सभी आत्माओं में साधारण रूप से स्थित हैं। इन सबका कारण [2]अशुद्ध मायातत्त्व है। यह माया नित्य, व्यापक और समस्त आत्माओं के (शुभाशुभ) कर्मों से संबद्ध होते हुए भी, ज्ञान और क्रियाशक्ति की प्रकाशक होते हुए भी पुरुष को व्यामोह में डाल देती है।

इसके ऊपर बत्तीसवाँ शुद्ध विद्यातत्त्व है और उसके भी ऊपर तैंतीसवाँ ईश्वरतत्त्व स्थित है। इस शुद्ध विद्यातत्त्व में सात करोड़ महामन्त्र, कामिक आदि अट्ठाईस

---

१. याणां-क.। २. 'सर्वेषां' नास्ति-ख.ग.। ३. समस्तकर्मा-क.।

1. शैवागमों में पुर्यष्टक अथवा सूक्ष्म शरीर में पृथ्वी से कला पर्यन्त तीस ही तत्त्वों की स्थिति मानी गई है। ग्रन्थकार स्वयं भी दो पंक्तियों के बाद तीस तत्त्वों की ही चर्चा करते हैं।
2. मायातत्त्व की शुद्धाशुद्ध (मिश्राध्वा) विभाग में गणना की जाती है। यहाँ उसको अशुद्ध बताया गया है। यह इसलिये कि माया को अशुद्ध सृष्टि का उपादान माना गया है। अगले पृष्ठ की चौथी टिप्पणी देखिये। अथवा महामाया कुण्डलिनी से इसका भेद बताने के लिये उसके साथ अशुद्ध विशेषण दिया गया है, जैसे कि अशुद्ध विद्या से भेद करने के लिये शुद्धविद्या नाम दिया गया।

दयोऽष्टौ गणेश्वराश्च सिद्धान्तशास्त्रेण पूज्यमानाः, इन्द्रादिलोकपालाश्च, एतेषामायुधानि वज्रादीनि च वसन्ति। ईश्वरतत्त्वे विद्येश्वरा अनन्तादयोऽष्टौ वर्तन्ते।

विद्येश्वरतत्त्वम्

एतेष्वनन्तः सर्वेश्वरत्वादेतेषां विद्येश्वराणां विद्यातत्त्ववासिनामन्येषां चेश्वरभूतः, मायाक्षोभकश्च, मायातत्त्वभुवनानां स्रष्टा च। किञ्चायं परमेश्वराद् भिन्नः, अधिकाराख्य[१]मलस्य पाकेन परमेश्वरेणानुगृहीतश्च भवति। अनेन सृष्टिरूपेणाणव-कार्मबन्धद्वयवन्तः प्रलयाकला इत्यभिहिताः। आत्मराशौ मलपाकवन्तो निरधिकरणेनैव[२] परमेश्वरेणानुगृहीता अष्टादशाभ्यधिकशतरुद्राः सन्ति। एतेषु श्रीकण्ठरुद्रो मध्यम-

---

संहिताएँ[1], सिद्धान्तशास्त्र द्वारा पूजित नन्दी आदि आठ [2]गणेश्वर, इन्द्र आदि आठ लोकपाल[3] और इनके वज्र आदि आयुध निवास करते हैं। ईश्वरतत्त्व में अनन्त आदि आठ [4]विद्येश्वर स्थित हैं।

इनमें अनन्त सबका अधिपति है, अतः यह इन विद्येश्वरों का और विद्यातत्त्व में निवास करनेवाले गणेश्वर आदि का भी स्वामी है। यही माया का क्षोभक है और यही मायातत्त्व के भुवनों का स्रष्टा भी है। यह परमेश्वर (शिव) से भिन्न है। [5]अधिकारनामक

---

१. ख्यैकम–क.। २. करण एव–क.।

1. अट्ठाईस शैवागमों को यहाँ और आगे भी (पृ. १३) संहिता कहा गया है। इस उक्ति से यह बात खण्डित हो जाती है कि संहिता शब्द से केवल वैष्णव तन्त्र ही संबोधित होते हैं।
2. आठ गणेश्वरों की नामावली अपेक्षित है।
3. इन्द्र आदि आठ लोकपालों के नाम अमरकोश में इस प्रकार बताये गये हैं– "इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्।।" (१.६.३)।
4. अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी नामक आठ विद्येश्वरों के नाम सिद्धान्तशिखामणि की टीका (३.४४) तथा अन्यत्र भी मिलते हैं। इनमें अनन्त मुख्य हैं। माया की सहायता से ये मलिन सृष्टि की रचना करते हैं। महामाया के आश्रय से स्वयं भगवान् शिव शुद्ध सृष्टि करते हैं– "शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः।।" (कि० वि० ३.२७)। अघोर शिवाचार्य ने अष्टप्रकरण में स्थित ग्रन्थों की अपनी व्याख्याओं में इस वचन को अनेक स्थलों पर उद्धृत कर उसकी व्याख्या की है।
5. मतंगपारमेश्वर के विद्यापाद के ३-४ पटलों में शिव की लय, भोग और अधिकारनामक तीन अवस्थाओं का विस्तृत विवरण मिलता है। शुद्ध सृष्टि के पाँच तत्त्वों में से प्रथम लयावस्था, द्वितीय भोगावस्था और शेष तीन तत्त्व अधिकारावस्था के प्रतीक माने जा सकते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में अधिकारावस्था की चर्चा है।

प्रलयान्ते प्रकृतितत्त्वान्तादर्वाक्तत्त्वेषु भुवनानां च स्रष्टा। आणवकार्ममायात्मकबन्धत्रितयेन युक्तानां सकलानामात्मनां राशौ ज्ञानयोगतपोध्यानादिभिर्विशिष्टश्च ब्रह्मविष्णुपदयोर्निर्वाहकश्च भवति। अस्य [१]मध्यमप्रलयसमये रागतत्त्वेऽवस्थानम्। पश्चात् सृष्टिकाले प्राप्तेऽशुद्धाध्वसृष्टिपूर्वं ब्रह्मविष्णुसृष्टीनामधिष्ठाता स्थित्वाऽ[२]र्वाक्तनभुवनेश्वराणां च त्रयस्त्रिंशत्कोटीनां देवानामीश्वराणां च [३]ब्रह्माण्डानि सृजति। ब्रह्माण्डे चतुर्दशभुवनं सकलात्मनामावासभूमिः।

११८ रुद्राः

पूर्वोक्तरुद्रेषु शतं रुद्राः पाञ्चभौतिकस्य ब्रह्माण्डस्य रक्षका भवन्ति। गुणतत्त्वे ब्रह्मविष्णुभ्यां सह स्थितो[४] रुद्रभट्टारको मध्यमप्रलयपर्यन्तमधिकारं कृत्वेमौ

मल का परिपाक होने पर इस पर परमेश्वर का अनुग्रह होता है। सृष्टि-प्रक्रिया में आणव और कार्म मल से युक्त जीव प्रलयाकल[1] कहलाते हैं। इन आत्माओं के समूह में जिनका मल परिपक्व हो जाता है, जिनके ऊपर परमेश्वर का अपार अनुग्रह होता है, वे एक सौ अठारह रुद्र कहलाते हैं। इनमें श्रीकण्ठ नामक रुद्र [2]मध्यम प्रलय के अन्त में प्रकृतितत्त्व के ऊपर स्थित भुवनों की सृष्टि के कर्ता माने जाते हैं। आणव, कार्म और मायात्मक त्रिविध मलों से संयुक्त सकलनामक आत्माओं की राशि में से ज्ञान, योग, तप, ध्यान आदि के अनुष्ठान से विशिष्ट स्थान प्राप्त कर ब्रह्मा और विष्णु के पद का निर्वाहक बन जाता है। मध्यम प्रलयावस्था में यह रागतत्त्व में निवास करता है। काल के परिपाक से पुनः सृष्टि होने पर अशुद्धाध्वा की सृष्टि के साथ ब्रह्मा और विष्णु की सृष्टि का भी यह अधिपति हो जाता है, अद्यतन समस्त भुवनों का भी वह ईश्वर हो जाता है। तैंतीस करोड़ देवताओं का ईश्वर होकर वह ब्रह्माण्ड आदि की सृष्टि में समर्थ हो जाता है। ब्रह्माण्ड में स्थित १४ भुवन इन सकलनामक आत्माओं की निवास भूमियाँ हैं।

ऊपर प्रदर्शित ११८ रुद्रों में से एक सौ रुद्र पाँच भौतिक ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। गुणतत्त्व में ब्रह्मा और विष्णु के साथ स्थित रुद्र भट्टारक मध्यमप्रलय पर्यन्त अपने

---

१. मध्यमध्य–क.। २. त्वाऽद्यतन–ख.। ३. ब्रह्माण्डाद्यण्डा–ख.ग.। ४. 'स्थितो' नास्ति–क.ग.।

1. जीव की प्रलयाकल और सकल अवस्था के साथ विज्ञानाकल अवस्था के भी स्वरूप का विचार ग्रन्थ की प्रस्तावना में किया जायगा।
2. कनिष्ठ, मध्यम और महाप्रलय नामक संहार की त्रिविध स्थितियों का निरूपण मतंगपारमेश्वर विद्यापाद के २५वें पटल में किया गया है।

ब्रह्माण्डपती[1] ब्रह्मविष्णू चोपसंहृत्य स्वयं मिश्राध्वनि[2] रागतत्त्वे वर्तते। अनेन सह वीरभद्रदेवश्च वर्तते। प्रकृतिमस्तकेऽष्टौ कलामस्तकेऽष्टौ श्रीकण्ठवीरभद्रौ च शतरुद्राः [च], एवमष्टादशाभ्यधिकशतरुद्राः परमेश्वरेणानुगृहीताः शरीरिणो भवन्तो ब्रह्मविष्णुवदज्ञानादिभिरस्पृष्टा ब्रह्मविष्ण्वादिपदान्यात्मकर्तृकज्ञानयोगबलेन सम्पादयन्ति। एतेषामष्टादशशतरुद्राणां मलपाकाद् दीक्षापूर्वकं परमेश्वरप्रसादाच्च पदप्राप्तिः। शुद्धविद्यातत्त्वनिवासिनां मलपाकात् परमेश्वरप्रसादाच्च पदप्राप्तिः। एतेषां विद्येश्वराणां च [3]शरीरं बैन्दवम्। अष्टादशशतरुद्राणां शरीरं मायीयम्। ब्रह्मविष्ण्वादीनां शरीरं प्राकृतम्। अष्टादशशतरुद्राणां विद्येश्वराणां च स्वरूपमिव साक्षात् परमेश्वरस्य सकलानि स्वरूपाणि पूजाविधिषु[4] ध्येयानि। ब्रह्मविष्णुशरीरस्य प्राकृतत्वात् परमेश्वरानुग्रहस्य पूर्वमसम्भवाच्च ब्रह्मविष्णुशरीरवत्परमेश्वरः केनापि न ध्यायते। ब्रह्मविष्णुपदं पशुभूमिः। रुद्रपदमीश्वरपदमुभयं पतिभूमिः।

अधिकार का भोग कर इस ब्रह्माण्ड के अधिपति ब्रह्मा और विष्णु का उपसंहार कर स्वयं मिश्राध्वा (शुद्धाशुद्ध) में स्थित रागतत्त्व में निवास करता है। वीरभद्र भी इनके साथ रहते हैं। प्रकृति के मस्तक पर आठ, कला के मस्तक पर आठ, श्रीकण्ठ और वीरभद्र इन सबके साथ स्थित एक सौ रुद्र—ये सब मिलकर एक सौ अठारह रुद्र होते हैं। शरीर के होते हुए भी परमेश्वर के अनुग्रह से ये ब्रह्मा और विष्णु के समान अज्ञान से आवृत नहीं होते और अपने ज्ञान और तप के बल से ब्रह्मा, विष्णु आदि के पदों (अधिकारों) को प्राप्त कर लेते हैं। इन एक सौ अठारह रुद्रों को, मलपाक होने पर दीक्षा के द्वारा और परमेश्वर के प्रसाद से, उक्त पदों की प्राप्ति होती है। शुद्ध विद्यातत्त्व में निवास करनेवाले जीवों को मलपाक से और परमेश्वर के प्रसाद से इन पदों की प्राप्ति होती है। इनमें से विद्येश्वरों का शरीर बैन्दव (बिन्दुनिर्मित) है, एक सौ अठारह रुद्रों का शरीर मायीय (मायानिर्मित) है और ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि का शरीर प्राकृतिक (प्रकृति से निर्मित) है। एक सौ अठारह रुद्रों और विद्येश्वरों के स्वरूप के समान परमेश्वर के सकल (साकार) स्वरूपों का भी ध्यान पूजाविधि में किया जाता है। ब्रह्मा और विष्णु का स्वरूप प्राकृतिक है और इन पर प्रथमतः ईश्वर का अनुग्रह होता भी नहीं, अतः ब्रह्मा और विष्णु का ध्यान परमेश्वर के रूप में नहीं किया जाता। ब्रह्मा और विष्णु का पद पशुभूमि में स्थित है। रुद्रपद और ईश्वरपद इन दोनों का पतिभूमि में अन्तर्भाव है।

---

१. वर्ति—क., वर्ती—ग.। २. ध्वरा—क.ख.। ३. स्वरूपं—क.। ४. विषयेषु—ख.।

अधिकार-भोग-लयतत्त्वानि

एवम्भूतादस्मादीश्वरतत्त्वादूर्ध्वं सदाशिवतत्त्वम्। अतः परं शक्तितत्त्वम्। अत ऊर्ध्वं शिवतत्त्वम्। एतत् तत्त्वत्रयं[१] परमेश्वरस्याधिकारभोगलयतत्त्वे संज्ञानिमित्तम्। एतस्मिन् तत्त्वत्रये परमेश्वराद् व्यतिरिक्तानि कर्तृभूतान्यात्मान्तराणि[२] न विद्यन्ते। लयभोगाधिकारपदानि श्रद्दधानाः साधकदीक्षया दीक्षिता मन्त्रसाधकाः पश्चात् परमेश्वरप्रसादेन तत्तद्भुवनं प्राप्य भोक्तारो वैराग्यपर्यन्तं वा महासंहारपर्यन्तं वा स्थित्वा विद्येश्वरैः सह परमुक्ताश्चात्मानो भवन्ति।

विद्यातत्त्वेऽकारादिक्षकारान्ता[नि] एकपञ्चाशदक्षराणि, कामिकाद्यष्टाविंशतिसंहिताश्च वैखरीरूपाणि[३] वर्तन्ते। ईश्वरतत्त्वे प्रणवश्च, सदाशिवतत्त्वे सकलो

ऊपर वर्णित ईश्वरतत्त्व के ऊपर सदाशिवतत्त्व स्थित है। शक्तितत्त्व की स्थिति इसके भी ऊपर है। इन सबके ऊपर शिवतत्त्व की स्थिति है। ये तीन तत्त्व परमेश्वर के [1]अधिकार, भोग और लयतत्त्व के नाम से शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। इन तीनों तत्त्वों में परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी कर्तृस्वरूप आत्मा की स्थिति नहीं है। लय, भोग और अधिकारपदों पर श्रद्धा रखनेवाले, दीक्षा-प्राप्त दीक्षित साधक मन्त्रों की आराधना करके परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त करते हैं और उन-उन भुवनों में जाकर वहाँ के दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए वे वैराग्य पर्यन्त अथवा महासंहार पर्यन्त विद्येश्वरों के साथ रहते हुए अन्त में मुक्त आत्मा की पदवी को प्राप्त कर लेते हैं।

विद्यातत्त्व में स्थित [2]अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त पचास वर्ण (अक्षर) और कामिक आदि अट्ठाईस संहिताएँ वैखरी वाणी का विस्तार हैं। ईश्वरतत्त्व में प्रणव, सदाशिवतत्त्व में सकलबिन्दु[3] और सकलनाद एवं शक्तितत्त्व में सूक्ष्म अभिधेयबुद्धि के बीज प्रत्येक आत्मा में पृथक्-पृथक् सूक्ष्मनाद के रूप में स्थित हैं। शिवतत्त्व और कारणबिन्दु अभिन्न है। बिन्दु में और शिवतत्त्व में तत्त्व की दृष्टि से कोई भेद नहीं है।

---

१. त्रितयमस्मात्-क.। २. णि च-ख.। ३. इतः परं-'वाणी' इत्यधिकः पाठः-क.।

1. ऊपर की पृ. १० की ५वीं टिप्पणी देखिये। इनकी तुलना बौद्ध महायान साहित्य में वर्णित भगवान् बुद्ध के धर्म, संभोग और निर्माण नामक तीन कायों से की जा सकती है।
2. बौद्ध तन्त्र-ग्रन्थ वसन्ततिलक (पृ.७२) में भी अकार से ही समस्त शास्त्रों का उद्भव माना गया है। प्रथम पृष्ठ की पहली टिप्पणी देखिये।
3. नाद और बिन्दु के साथ कला तत्त्व का विचार प्रस्तावना में किया जायगा।

बिन्दुः सकलो नादश्च, शक्तितत्त्वे सूक्ष्माभिधेयबुद्धि[१]बीजमात्मन्यात्मनि पृथक् पृथग् भूत्वा सूक्ष्मनादात्मकस्तिष्ठति। शिवतत्त्वस्य(तत्त्वे) कारणं(ण)बिन्दुश्च। बिन्दोः शिवतत्त्वस्य च तत्त्वे भेदव्यपदेशो नास्ति। शिवतत्त्वमधिष्ठाय स्थितस्य सदाशिवस्य शक्तिः, सकलः, [२]सकलासकलः, निष्कलः, व्यक्ताव्यक्तस्यात्मा, व्यक्तमहेश्वरः, व्यक्ताव्यक्तसदाशिवः, निष्कलशिव इति च नाम स्थितानि।

बिन्दुलक्षणम्

एतेषु षट्त्रिंशत्तत्त्वेषु बिन्दुर्नित्यो व्यापकोऽमूर्तः परमेश्वरस्य नित्याधिष्ठेयः शब्दार्थात्मकनादादिद्वारेणात्मनां सम्यग् ज्ञानस्य कारणं भवति, अमोहकश्च, [३]मायीयव्यतिरिक्तसमस्तवस्तूनामुपादानं जडश्च।

शिवतत्त्व को आधार बनाकर स्थित सदाशिव की शक्ति ही सकल, सकल-निष्कल, व्यक्ताव्यक्त, निष्कल, व्यक्त महेश्वर, व्यक्ताव्यक्त सदाशिव, निष्कल शिव आदि नामों से अभिहित होती है।

इन छत्तीस तत्त्वों में बिन्दु नित्य, व्यापक और अमूर्त है। यही परमेश्वर में नित्य अधिष्ठित शब्द और अर्थ स्वरूप नाद आदि के रूप में आत्माओं के सम्यक् ज्ञान का कारण बनता है। यह माया के जैसा मोहक नहीं है। माया को छोड़कर यह सभी वस्तुओं का उपादान कारण है और अजड़ है।

पृथिवीतत्त्व से लेकर शिवतत्त्व पर्यन्त छत्तीस तत्त्व तत्त्वाध्वा, कालाग्नि से लेकर अनाश्रितभुवन पर्यन्त दो सौ चौबीस [1]भुवन भुवनाध्वा, अकार से लेकर क्षकारपर्यन्त

---

१. याबिन्दु –क.। २. सकलनिष्कलः–क.। ३. मायेयव्यतिरेक-ख.ग.।

1. शैवागमों में प्रधानतः २२४ भुवनों का वर्णन मिलता है। साथ ही भुवनों की संख्या के विषय में यहाँ विभिन्न मत भी मिलते हैं। तन्त्रालोक (८.४३६) तथा पण्डित एन० आर० भट्ट का मतंगपारमेश्वर विद्यापाद का संस्कृत उपोद्घात (पृ. ४७) देखिये। यहीं (पृ. ४८) तत्त्वों की संख्या के विषय में भी मतभेद देखिये।

षडध्वानः

[१]ततः पृथिवीमारभ्य शिवान्तानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानि तत्त्वाध्वा। कालाग्निभुवनमारभ्यानाश्रितभुवनपर्यन्तानि[२] भुवनानि द्विशतचतुर्विंशद्भुवनाध्वा। अकारादिक्षकारान्तान्येकपञ्चाशदक्षराणि वर्णाध्वा। व्योमव्यापिमन्त्रात्मकान्येकाशीतिपदानि पदाध्वा। मूलब्रह्माङ्गरूपाणि [३]द्वादशमन्त्राणि मन्त्राध्वा। निवृत्त्यादिपञ्चकलाः कलाध्वा। एतेषु कलातत्त्वभुवनात्मानस्त्रयोऽध्वानो द्रव्यात्मकाः। वर्णपदमन्त्रात्मानस्त्रयोऽध्वानः शब्दरूपाः। एतेषु भुवनाध्वा तत्त्वाध्वानमाश्रित्य वर्तते, [४]एवं तत्त्वाध्वा कलाध्वान-

---

५१ [1]अक्षर वर्णाध्वा, व्योमव्यापी इत्यादि [2]मन्त्रात्मक ८१ पद पदाध्वा, मूल पंच ब्रह्म और छः अंगमन्त्रों को मिलाकर ११ मन्त्र मन्त्राध्वा और निवृत्ति आदि पाँच [3]कलाएँ कलाध्वा कहलाती हैं। इनमें से कला, तत्त्व और भुवननामक तीन अध्वा द्रव्यात्मक (अर्थस्वरूप) तथा वर्ण, पद और मन्त्रनामक तीन अध्वा [4]शब्दस्वरूप हैं। इनमें से भुवनाध्वा तत्त्वाध्वा पर तथा तत्त्वाध्वा कलाध्वा पर [5]आश्रित हैं। वर्ण, पद और मन्त्रात्मक तीन अध्वा विभिन्न भुवनों में उत्पन्न शरीरों की अपेक्षा रखते हैं। इन छः अध्वाओं का

---

१. 'ततः' नास्ति—ख.। २. पर्यन्तभु—ख.। ३. एकादश—ख.ग.। ४. 'एवं··· वर्तते' नास्ति—क., एवं तत्त्वं कलामाश्रित्य—ख., अग्रे 'शुद्धमाया' इत्यतः परमयं पाठः क. पुस्तकेऽपि दृश्यते।

1. अक्षरों (मातृका-वर्णों) की संख्या प्रधानतः पचास ही मानी गई है, किन्तु ५१ संख्या वाला पक्ष भी अनेक स्थानों पर मान्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ में दोनों ही पक्ष मिलते हैं।
2. पदाध्वा का निरूपण काश्मीर शैवागम के ग्रन्थों में भिन्न पद्धति से किया गया है। लुप्तागमसंग्रह, द्वितीय भाग, उपोद्घात (पृ. १८२-१८३) देखिये।
3. शैवागमों और पुराणों में भी चार ही कलाओं का निरूपण मिलता है। वहाँ शान्त्यतीता का समावेश नहीं है। वीरशैव-सम्प्रदाय में कलाओं की संख्या छः बताई गई है। देखिये—अनुभवसूत्र (३.२४-२६)।
4. देशाध्वा और कालाध्वा के रूप में षडध्वविचार तन्त्रालोक के ६-११ आह्निकों में विस्तार से किया गया है। वहाँ देशाध्वा में कला, तत्त्व तथा भुवन और कालाध्वा में वर्ण, पद एवं मन्त्र समाविष्ट हैं।
5. अध्वाओं की लय-प्रक्रिया का विचार यहाँ अधूरा है। लुप्ता० उपो०, पृ. १९९-२०२ पर इसका विस्तृत परिचय मिल सकता है।

माश्रित्य वर्तते। वर्णपदमन्त्रात्मकास्त्रयोऽध्वानो भुवनजशरीरापेक्षया वर्तन्ते। एतेषां षडध्वनां परमकारणं वस्तु कुण्डलिनी शुद्धमाया [१]शुद्धविद्या ब्रह्मेति चोच्यते। [२]तत्राऽशुद्धाध्वनां परमकारणमशुद्धमायेत्युच्यते। एते षडध्वान आत्मनः संसारः।

त्रिविधाः पशवः

षडध्वव्यतिरिक्ता नित्या व्यापकाश्चेतनाः प्रतिशरीरं भिन्ना मलिनाः कर्मकर्तारः कर्मफलभोक्तारः किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तारः सेश्वराश्च भवन्त्यात्मानः। एते बन्धभेदेन सकलः प्रलयाकलो विज्ञानाकल इति च त्रिविधा उच्यन्ते। एतेषामात्मनां मायाबन्धः कलादिपृथिव्यन्ततत्त्वानि, भुवनभौवनादिरूपः कर्मबन्धो ज्योतिष्टोमब्रह्महत्यादिभिरुत्पन्नोऽपूर्वाख्यसंस्काररूपः [३]पुर्यष्टकमध्यगतः, बुद्धितत्त्वमाश्रित्य सुखदुःखमोहात्मकफलश्च भवति।

परमकारण कुण्डलिनी अथवा [1]शुद्धमाया है। इसको शुद्धाध्वा अथवा ब्रह्म भी कहा जाता है। [2]अशुद्ध अध्वाओं का परमकारण अशुद्ध माया को माना जाता है। उक्त छः अध्वा ही आत्मा का संसार है।

इन अध्वाओं के अतिरिक्त [3]नित्य, व्यापक, चेतन, प्रत्येक शरीर में भिन्न, मलिन आत्माएँ शुभाशुभ कर्मों की कर्ता और उनके फलों की भोक्ता के रूप में स्थित हैं। इनमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति अल्प मात्रा में रहती है। इसी तरह से इनमें ईश्वरत्व भी अल्प मात्रा में ही विद्यमान है। बन्धन के भेद से ये आत्माएँ सकल, प्रलयाकल और विज्ञानाकल के नाम से तीन प्रकार की होती हैं। आत्माएँ माया से बँधी रहती हैं। कला से लेकर पृथिवी पर्यन्त तत्त्व की इनमें सूक्ष्म रूप से स्थिति रहती है और विभिन्न भुवनों में तदनुरूप

---

१. पूर्वपृष्ठस्थान्तिमा पाठटिप्पणी द्रष्टव्या। २. 'तत्र' नास्ति–क.। ३. बुद्ध्य–ख.।

1. महामाया अथवा कुण्डलिनी को शुद्धाध्वा का उपादान माना गया है। पृ. १० की ४ थी टिप्पणी देखिये। यहाँ कुण्डलिनी अथवा शुद्धमाया को ब्रह्म कहा गया है। इसका अभिप्राय शब्दब्रह्म के रूप में लेना चाहिये।
2. शैवागमों में शुद्धाध्वा का उपादान महामाया को, मिश्राध्वा का उपादान माया को और अशुद्धाध्वा का उपादान प्रकृति को माना गया है।
3. आत्मा को यहाँ षडध्व से तथा ३६ तत्त्वों से भी अतिरिक्त माना गया है।

पाशपञ्चकम्

मलाख्यबन्ध आत्मनां ज्ञानक्रियावारक आत्मन्यात्मनि पृथक् पृथग् भूत्वा स्वकालान्तो[१]पाध्यनेकशक्तिसहित[२]नित्यव्यापकजडद्रव्यं भवति। बैन्दवो बन्धो विद्याविद्येश्वरादिशरीराणां कारणम्, सकलाख्यसंसारिभोगपरिकरीभूतः, सूक्ष्मादिवैखर्यन्त-शब्दहेतुश्च भवति। निरोधशक्त्यात्मकबन्धो मायाकर्माणवबैन्दवपाशचतुष्टयस्याना-दिधर्महेतुः [३]शिवशक्तिरेवोपचारात् [४]पाश इत्युपचर्यते। एवमात्मनां बन्धाः पञ्चविधाः।

तत्र शुद्धाध्ववर्तिनां बैन्दवो रोधशक्तिश्चेति पाशद्वयम्। मिश्राध्ववर्तिनां त्वेतद् द्वयम्, आणवः कार्मश्चेति पाशचतुष्टयम्। अशुद्धाध्ववर्तिनां [५]त्वेतच्चतुष्टयं मायीयं

विषयों का उपभोग करते हैं। ज्योतिष्टोम और ब्रह्महत्या आदि शुभ और अशुभ कर्मों से इनमें अपूर्व नामक संस्कार उत्पन्न होता है। इसकी स्थिति पुर्यष्टक (सूक्ष्म शरीर) में रहती है। बुद्धितत्त्व के सहारे यह सुख, दुःख और मोहरूपी फल का उपभोग करता है।

मलनामक बन्ध आत्माओं की ज्ञान और क्रियाशक्ति को आवृत कर देता है, ढँक देता है। प्रत्येक आत्मा में इसकी अलग-अलग स्थिति रहती है। अपने कर्मों के अनुसार इसकी स्थिति एक निश्चित अवधि तक रहती है। यह मल नाना प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न, नित्य, व्यापक और जड़ द्रव्य माना गया है। [1]बैन्दव नामक बन्ध शुद्धविद्या और ईश्वरतत्त्वगत शरीरों का कारण माना जाता है। सकल जीवों के सांसारिक भोगों का उपादान तथा सूक्ष्म (परावाक्) से वैखरी पर्यन्त शब्दराशि का कारण भी यही है। निरोधशक्तिस्वरूप बन्ध माया, कर्म, आणव और बैन्दव नामक चार पाशों का अनादिकारण माना गया है। यह निरोधशक्ति शिव की ही शक्ति है, तो भी इस स्थिति में निरोधकशक्ति के रूप में कार्य करने से इसको भी औपचारिक रूप से पाश माना जाता है। इस तरह से आत्मा के ये पाँच प्रकार के बन्धन माने गये हैं।

---

१. न्तोऽपायो–क.। २. 'सहित' नास्ति–ख.। ३. 'शिव' नास्ति–ग.। ४. पशुपाश इत्युच्यते-ग.। ५. 'एतच्च··· चेति' नास्ति–क.।

1. पृष्ठ १३ की तीसरी टिप्पणी देखिये।

चेति पञ्चविधबन्धाः। एतेषु शुद्धाध्ववासिनां मुक्तात्मनामिव निरतिशयं सुखमेव, दुःखस्पृष्टसुखदुःखमोहाश्च न सन्ति। अतो हेतोरयं 'शुद्धाध्वा' इत्यभिधीयते। मिश्राध्ववासिनां तु निरञ्जनान् विहाय साञ्जनानां स्वा(सा)वधिसर्वज्ञतायां सत्यामपि [१]सुखदुःखमोहाः सन्ति। अतोऽयं 'मिश्राध्वा' इत्यभिधीयते। अशुद्धाध्ववासिनां तु निरञ्जनान् विहाय साञ्जनानां केषाञ्चित् स्वा(सा)वधिसर्वज्ञतायां सत्यामप्यन्येषां किञ्चिज्ज्ञत्वं किञ्चित्कर्तृत्वं च सुखदुःखमोहाश्च सन्ति। अतो हेतोरयम् 'अशुद्धाध्वा' इत्यभिधीयते।

अत्र बैन्दवो मायीयश्चेति द्वौ पाशावागन्तुकौ, कार्मपाशस्तु प्रवाहानादिर्भोगनाश्यः। आणवपाशस्तु कूटस्थानादिः स्वपाकान्ते परमेश्वरप्रसादात्मिकया दीक्षया निवर्त्यः। कार्मपाशस्तु विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगेन वा क्षीयते। एते ज्ञानादयः शास्त्रद्वारात्[२] सम्पद्यन्ते।

इनमें से शुद्ध अध्वा के भुवनों में निवास करनेवाली आत्माओं में बैन्दव और रोधशक्ति नामक दो ही पाश रहते हैं। मिश्र अध्वा के भुवनों में रहनेवाले जीवों में इन दो पाशों से अतिरिक्त आणव और कार्म नामक दो पाश और होते हैं। इस तरह से ये चार पाशों से बँधे रहते हैं। अशुद्ध अध्वा के भुवनों में स्थित जीवों में इन चार के अतिरिक्त मायानामक पाश भी रहता है। इस तरह से इनमें पाँचों प्रकार के बन्धन विद्यमान रहते हैं। इनमें से शुद्ध अध्वा में निवास करनेवाले जीवों में मुक्त आत्मा की तरह सदा निरतिशय सुख की स्थिति रहती है। दुःख से स्पृष्ट सुख, दुःख और मोह इनमें नहीं रहते। इसीलिये इसको शुद्धाध्वा कहते हैं। मिश्राध्वा में रहनेवाले जीवों में [1]निरंजनों को छोड़कर बाकी के सांजन जीवों में सावधिक सर्वज्ञता के रहने पर भी सुख, दुःख और मोह की स्थिति रहती है। इसलिये इसे मिश्राध्वा कहते हैं। अशुद्ध अध्वा में रहनेवाले जीवों में निरंजनों को छोड़कर कुछ सांजनों में संकुचित ज्ञान और क्रियाशक्ति के साथ सुख, दुःख और मोह की भी स्थिति रहती है। इसीलिये इसे 'अशुद्धाध्वा' कहते हैं।

यहाँ बैन्दव और मायीय ये दो पाश आगन्तुक हैं। [2]कार्म पाश प्रवाहरूप से अनादि है, तो भी भोग से इसका नाश हो जाता है। आणव पाश अनादि होते हुए भी एक

---

१. 'सुख...ज्ञत्वं' नास्ति–ख.ग.। २. द्वारा-ख.।

1. पाशुपत मत में निरंजन और सांजन के भेद से पशु की दो अवस्थाएँ वर्णित हैं। निष्ठावस्थापन्न सिद्ध योगी ही निरंजन कहलाता है। "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (३.१.३) मुण्डकोपनिषद् के इस वचन में इसीकी चर्चा है।
2. कार्म पाश का यहाँ दो बार उल्लेख हुआ है। इसमें कुछ त्रुटि लगती है। तिरोधान व्यापार की यहाँ चर्चा नहीं है।

पञ्चविधानि शास्त्राणि

तानि च शास्त्राणि पञ्चविधानि—लौकिकम्, वैदिकम्, आध्यात्मिकम्, अतिमार्गम्, मान्त्रं चेति। लौकिकं त्वायुर्वेददण्डनीत्यादिदृष्टफलं शास्त्रम्। वैदिकं च वेदेषु क्रियाभागमुद्दिश्य ज्योतिष्टोमादिपुण्यसम्पादितस्वर्गादिसाधकमीमांसाशास्त्रं च वेदविषय(या)पौरुषेयसाधकम्, पदार्थप्रमाणयोः परीक्षां कुर्वद्भी [१]ऋषिभिः प्रणीते न्यायवैशेषिके शास्त्रे च। एतत्त्रितयं दृष्टादृष्टफलं शास्त्रम्। आध्यात्मिकं तु सांख्य-पातञ्जल-वेदान्ताख्यान्युपनिषद्भागमुद्दिश्य ऋषिभिः प्रणीतान्यात्मज्ञानफलानि शास्त्राणि[२]। अतिमार्गं तु शास्त्रं रुद्रप्रणीतानि पाशुपतकापालमहाव्रतानि। मान्त्रं तु शिवप्रणीतसिद्धान्तशास्त्रम्।

जगह टिका रहता है। इसकी निवृत्ति उसकी परिपाकावस्था में परमेश्वर के अनुग्रह से प्राप्त दीक्षा के द्वारा होता है। कार्म पाश की निवृत्ति विज्ञान, योग, संन्यास अथवा भोग से होती है। ज्ञान आदि की प्राप्ति शास्त्रों के माध्यम से होती है।

ये शास्त्र [1]लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, आतिमार्गिक और मान्त्र के भेद से पाँच प्रकार के हैं। आयुर्वेद, दण्डनीति आदि शास्त्र लौकिक हैं। इनके अध्ययन का लाभ तुरन्त दिखाई पड़ता है। वेदों के क्रियाभाग में निर्दिष्ट ज्योतिष्टोम आदि के अनुष्ठान से अर्जित पुण्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसका निर्देश करने- वाला मीमांसाशास्त्र वेदविषयक पुरुषकार का साधक है। पदार्थों और प्रमाणों की परीक्षा करनेवाले ऋषियों ने न्याय और वैशेषिक शास्त्रों की रचना की है। ये तीनों शास्त्र दृष्ट और अदृष्ट फल की व्याख्या करते हैं। वेदों के उपनिषद् भाग के सहारे ऋषियों के द्वारा प्रणीत सांख्य, पातंजल योग और वेदान्तशास्त्रों की गणना आध्यात्मिक शास्त्र में होती है। इनका प्रयोजन

---

१. 'ऋषिभिः' नास्ति-क.। २. 'शास्त्राणि' नास्ति-क.।

1. उमापति शिवाचार्य ने शतरत्नसंग्रह (पृ. ८-९) में कामिकागम और सोमसिद्धान्त के वचनों को उद्धृत कर पंचविध शास्त्रों में से प्रत्येक के पाँच-पाँच भेदों का अर्थात् कुल २५ प्रकार के शास्त्रों का उल्लेख किया है और कहा है कि इनका वर्णन सर्वात्मशम्भुकृत सिद्धान्तदीपिका में देखा जा सकता है। हम देखते हैं कि इन सभी पचीस शास्त्रों का विवरण यहाँ नहीं दिया गया है और मीमांसा, न्याय और वैशेषिकशास्त्र का वैदिक एवं आध्यात्मिक भेदों में भी सांख्य, योग तथा वेदान्त के साथ समावेश किया है (पृ. २६ देखिये)। प्रस्तुत ग्रन्थ में हमें शास्त्रों के पाँच-पाँच भेदों की अपेक्षा तीन-तीन भेदों का ही विवरण मिलता है।

मीमांसाशास्त्रम्

मीमांसाशास्त्रस्य वक्ता भगवान् जैमिनिः। अनेन शास्त्रेण तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — [१]वाक्यलक्षणं च, वेदा अपौरुषेया इति च, प्रपञ्चो नित्य इति च[२]। इष्टापूर्तं कर्मानुष्ठेयमिति च कर्मानुष्ठानमेवानुष्ठातुः स्वर्गादिसाधनमिति च, भौतिकशरीरेन्द्रियेभ्योऽन्ये आत्मानः, एते चानेके, एतेभ्य आत्मभ्यो विलक्षण ईश्वरः कश्चिन्न भवति, इति च प्रतिपादितम्।

वैशेषिकशास्त्रम्

वैशेषिकशास्त्रेण तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः—पृथिव्यप्तेजोवायव इति भूतानि चत्वार्यनित्यानि, एतेषां कारणानि तत्तन्नामानो भिन्नाः परमाणव इति च[३], एतेभ्योऽन्यच्छब्दकारणं नित्यं व्यापकं पञ्चममाकाशात्मकभूतमिति च। एतस्मादन्यो नित्यो काल ईश्वरश्च दिशश्च। एतेभ्यो भूतकारणशरीरेन्द्रियेभ्योऽन्येऽमूर्ता नित्या आत्मानोऽनेके। एतेभ्यो व्यतिरिक्तं नित्यं ज्ञानहेतुकं मन आत्मन्यात्मन्यभिधीयमानमनादि।

आत्मज्ञान कराना है। रुद्र के द्वारा प्रणीत पाशुपत, कापालिक और महाव्रत शास्त्रों की गणना अतिमार्ग में होती है। शिवप्रणीत सिद्धान्तशास्त्र मन्त्रशास्त्र कहलाता है।

मीमांसाशास्त्र के प्रवक्ता भगवान् जैमिनि हैं। इस शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित प्रमुख विषय ये हैं—वाक्य का लक्षण, वेदों की अपौरुषेयता, प्रपञ्च की नित्यता, [1]इष्टापूर्त कर्मों का अनुष्ठान, ज्योतिष्टोम आदि कर्मों के अनुष्ठान की स्वर्गसाधनता, भौतिक शरीर-शरीर इत्यादि से भिन्न आत्मा की सत्ता, इनकी अनेकता और इन आत्माओं से विलक्षण ईश्वर की सत्ता का निषेध।

वैशेषिकशास्त्र के द्वारा प्रतिपादित विषयों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—पृथिवी, जल, तेज और वायु नामक चार भूत अनित्य हैं। इनकी उत्पत्ति उन्हीं नामों के परमाणुओं से होती है। इन चारों भूतों से भिन्न, शब्द का कारण आकाश नाम का पाँचवाँ भूत है। यह नित्य और व्यापक है। आकाश से भिन्न नित्य काल, ईश्वर और दिशाओं की

---

१. वाक्यार्थ-ग.। २. च प्रतिपादितः-ख.। ३. 'च' नास्ति-क.।

1. तत्त्वप्रकाश के टीकाकार कुमारदेव ने इष्ट और पूर्त के नाम से धर्म के दो भेद किये हैं। इनमें से इष्ट को वैदिक धर्म और पूर्त को तान्त्रिक धर्म बताया है (पृ. ३७)। अग्निहोत्र आदि वैदिक अनुष्ठानों का इष्ट धर्म में तथा वापी, कूप, तडाग आदि के निर्माण का पूर्त धर्म में समावेश किया जाता है। "अथ क्रतुकर्मेष्टं पूर्तं खातादिकर्मणि" (२.७-२८) अमरकोश में भी यही कहा गया है।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसीति नव द्रव्याणि। एतेभ्यो व्यतिरिक्तः शुक्लादिगुणपदार्थः, एतस्मादन्य उत्क्षेपणादिः [१]कर्मपदार्थः। अतोऽन्यो गोत्वादिः सामान्यपदार्थः। पटे शौक्ल्यमित्यादिः समवायपदार्थः। एतेभ्यो द्रव्यगुणकर्मसामान्यसमवायेभ्यः पञ्चभ्योऽन्यो विशेषपदार्थः। एतेषु षट्सु आत्मनः पदार्थतत्त्वस्य मनःसंयोगाद् ज्ञानमुत्पद्यते। अनेन पुण्यापुण्यात्मकं कर्मानुष्ठानमुत्पद्यते, [२]अनेन पापात् पापात्मकं कर्मानुष्ठानमुत्पद्यते, पुण्यात् पुण्यात्मकं कर्मानुष्ठानमुत्पद्यते। अनेन शरीरेन्द्रियाणि च। पुण्यापुण्यवशेन स्वर्गनरकप्राप्तिः। सर्वस्य निर्वाहक ईश्वरः। अस्य मनःसंयोगाद् ज्ञानोत्पत्तिः, न तु स्वतः[३] प्रसिद्धं ज्ञानम्। इत्थम्भूतेन शरीरिणां साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानेन कर्मक्षयो भवति। मनःसंयोगजनितज्ञानं विना पाषाणकल्पो[४] भवति[५]। अयमेव मोक्ष इति च, वेदा ईश्वरकर्तृका इति च।

भी स्थिति अलग से है। इन भूतों से और इनसे उत्पन्न शरीर, इन्द्रिय इत्यादि से भिन्न अमूर्त, नित्य, अनेक आत्माओं की भी पृथक् स्थिति है। इनके अतिरिक्त नित्य, ज्ञान का कारण मन प्रत्येक आत्मा के साथ अनादिकाल से जुड़ा हुआ है। इस तरह से पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य यहाँ माने गये हैं। इन द्रव्यों से भिन्न शुक्ल, पीत आदि रूप, रस आदि के रूप में विभक्त गुण पदार्थ भी यहाँ माना गया है। इन गुणों से पृथक् उत्क्षेपण आदि के रूप में विभक्त कर्म पदार्थ है। गोत्व आदि जातियों का बोधक सामान्य पदार्थ इनसे भिन्न है। पट आदि में शुक्लता आदि की स्थिति समवाय नामक एक पृथक् पदार्थ का बोध कराती है। इन द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और समवाय नामक पाँच पदार्थों से भिन्न विशेष[1] नामक पदार्थ भी यहाँ माना गया है। [2]इन पदार्थों के मध्य आत्मा की विशेष स्थिति यह है कि इसके साथ मन का संयोग होने पर ज्ञाननामक गुण उत्पन्न होता है। इससे पुण्य और पाप के भेद से भिन्न कर्मों

---

१. 'कर्म··· गुणकर्म' नास्ति–ख.। २. 'अनेन··· मुत्पद्यते' नास्ति–ख.ग.। ३. स्वप्रसिद्धं–क.। ४. ताकल्पं वर्तन्ते–क.। ५. वर्तते–ख.ग.।

1. विशेष नामक अनितर साधारण पदार्थ को मानने के कारण ही यह दर्शन वैशेषिक के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।
2. इन छः पदार्थों के अतिरिक्त आधुनिक वैशेषिक-दर्शन में अभाव नामक सातवाँ पदार्थ भी स्वीकृत है, किन्तु प्रशस्तपादभाष्य और उसकी टीकाओं में छः ही पदार्थ परिगणित हैं। इसी पद्धति से यहाँ भी अभाव का परिगणन नहीं किया गया।

न्यायशास्त्रम्

न्यायशास्त्रेण तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — प्रत्यक्षादिप्रमाणानि प्रमेयसिद्धार्थज्ञेयानि च वैशेषिकोक्तक्रमेणैव। पदार्था एते षोडशविधा इति च, मोक्षलक्षणं च [१]एतेषूक्तप्रकारमिति च, ईश्वरपदार्थः [२] प्रयोक्ता नित्य इति च। एतच्छास्त्रद्वयप्रणेतारौ कणादाक्षपादौ च।

में उसकी प्रवृत्ति होती है। बुरे कामों से पाप की और अच्छे कर्मों से पुण्य की उत्पत्ति होती है। इन्हींके अनुसार आत्मा को विभिन्न शरीरों और इन्द्रियों की प्राप्ति होती है। पुण्य और अपुण्य के कारण ही उसे स्वर्ग और नरक में जाना पड़ता है। इन सबका निर्वाहक, सभी आत्माओं को पुण्य अथवा पापकर्म में प्रवृत्त करानेवाला ईश्वर है। ईश्वर में भी ज्ञान की उत्पत्ति मन के संयोग से ही होती है। वेदान्त-दर्शन के समान यहाँ उसमें स्वतःप्रतिष्ठित ज्ञान नहीं माना जाता। यहाँ आत्माओं का कर्मक्षय पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य के ज्ञान से होता है। मन के संयोग से उत्पन्न ज्ञान के अभाव में यह आत्मा पाषाण के समान संज्ञाशून्य रहता है। इसीको यहाँ मोक्ष कहा गया है। साथ ही यह भी यहाँ बताया गया है कि वेद ईश्वर के द्वारा रचित है।

न्यायशास्त्र के द्वारा प्रतिपादित विषय इस प्रकार हैं — प्रत्यक्ष आदि प्रमाण और उनके द्वारा ज्ञात प्रमेय पदार्थों की स्थिति वैशेषिक[1] के समान ही है। प्रमेय पदार्थों की संख्या यहाँ सोलह है। [2]मोक्ष का लक्षण भी वैशेषिक सदृश ही है। इन्होंने भी ईश्वर को सबका प्रेरक और नित्य माना है। वैशेषिक और न्यायशास्त्र के प्रवक्ता क्रमशः [3]कणाद और अक्षपाद हैं।

---

१. एतैरुक्त–ख.ग.। २. इतः परम् 'तत्त्वस्य च ज्ञानं चिकीर्षन्' इत्यधिकं–क.।

1. वस्तुतः वैशेषिक-दर्शन में दो या तीन ही प्रमाण अभिप्रेत हैं, जब कि नैयायिक मत में चार प्रमाण हैं। प्रमेय पदार्थों का भेद तो स्वयं ग्रन्थकार ने भी बता दिया है। आगे चलकर न्याय-वैशेषिक का यह भेद मिटता गया। ग्रन्थकार उसी स्थिति को सूचित करते हैं।
2. मोक्ष का स्वरूप न्याय और वैशेषिक में ही नहीं, पाशुपतमत में भी दुःखान्त स्वरूप ही था। यहाँ मोक्ष की स्थिति पाषाण-कल्प है। इस आक्षेप को देखते हुए उक्त तीनों मतों में परिवर्तन हुआ। मोक्ष का यह परिवर्तित स्वरूप व्योमशिव की प्रशस्तपादभाष्यटीका व्योमवती में, भासर्वज्ञरचित गणकारिका (पाशुपतमत) और न्यायभूषण में देखा जा सकता है।
3. पुराणों में तथा अन्यत्र भी २८ योगाचार्यों की तथा उनके ११२ शिष्यों की नामावली मिलती है। इनमें कणाद और अक्षपाद के नाम भी हैं। "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" में संगृहीत हमारा "पुराणवर्णिताः पाशुपता योगाचार्याः" शीर्षक निबन्ध देखिये।

सांख्यशास्त्रम्

सांख्यशास्त्रेण प्रतिपाद्यमानोऽर्थ: —नित्या, व्यापिका, जडरूपा, समस्तवस्तूनां कारणम्, सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था, अमूर्ता च प्रकृतिरियम्। प्रकृतिश्चतुर्विंशतितत्त्वमिति च। एतत्कार्यं बुद्धितत्त्वमारभ्य पृथ्वीतत्त्वान्तानि त्रयोविंशतितत्त्वानीति च। एवम्भूतचतुर्विंशतितत्त्वेभ्योऽन्ये नित्या व्यापका अमूर्ता नानाविधाः सर्वकृत्सर्वज्ञत्वरहिता ज्ञानमात्रस्वरूपा आत्मानः। एवं पञ्चविंशतितत्त्वमिति च। एतेषां मुक्तिदशायां संसारदशायां च निर्विशेषं स्वरूपेऽशुद्धिर्नास्तीति च। अनादिसिद्धाया बुद्धिगताया अविद्याया वशात् सांसारिकसुखदुःखज्ञानमुपपद्यत[१] इति च। प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानादविद्याया विनाशो मोक्ष इति च। आत्मभ्यो व्यतिरिक्त ईश्वर इति न कश्चिदिति च। एतच्छास्त्रप्रणेता कपिलः।

सांख्यशास्त्र के द्वारा प्रतिपादित विषय ये हैं—नित्या, व्यापिका, जडरूपा, समस्त जागतिक वस्तुओं को उत्पन्न करनेवाली, सत्त्व, रज और तम नामक तीन गुणों की साम्यावस्था को यहाँ प्रकृति के नाम से जाना जाता है। बुद्धितत्त्व से लेकर पृथिवीतत्त्व पर्यन्त तेईस तत्त्व इस प्रकृति के ही कार्य हैं। इन चौबीस तत्त्वों से भिन्न नित्य, व्यापक, अमूर्त स्वभाव, नाना प्रकार के सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व आदि गुणों से रहित, ज्ञानमात्रस्वरूप आत्मा की भी सत्ता यहाँ मानी गई है। इस प्रकार इनके मत में पचीस तत्त्व मान्य हैं। मुक्तिदशा अथवा संसारदशा में इनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं माना गया है। इनके स्वरूप में किसी प्रकार की अशुद्धि भी नहीं मानी गई है। अनादिकाल से चली आ रही बुद्धिगत अविद्या के कारण इसमें संसार के सुख-दुःख का ज्ञान उत्पन्न होता है। प्रकृति और पुरुष में परस्पर विवेकज्ञान के उत्पन्न होने पर [1]अविद्या की निवृत्ति ही यहाँ मोक्ष कहलाता है। इन आत्माओं से भिन्न ईश्वर की यहाँ कोई [2]सत्ता नहीं मानी गई है। इस शास्त्र के प्रणेता महर्षि कपिल हैं।

---

१. *मुत्पद्यत-ख.।*

1. सांख्यदर्शन में अविद्या के स्थान पर अविवेक शब्द प्रयुक्त है। "धर्मो ज्ञानं विवेक ऐश्वर्यम्। सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।।" (का. २३) यहाँ सांख्यकारिका में अविवेक पद गृहीत है।

2. ईश्वर की सत्ता का निषेध ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका की परम्परा में ही है। महापुराण, पुराण आदि में वर्णित तथा विज्ञानभिक्षु द्वारा व्याख्यात सांख्य ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है।

पातञ्जलशास्त्रम्

पातञ्जलशास्त्रेण तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थ इत्थम्— प्रकृतिप्राकृते चात्मानश्च बन्धमोक्षौ च[१], विवेकज्ञानवद् योगश्च, योगपरिकर इति च। षड्विंशतितत्त्वमीश्वर एकः[२]। अस्यात्मभ्यो विशेषः। स्वाधिष्ठानता निर्मा(र्वा)णं चेत्याख्यावत्। केवलवस्तुस्वरूपंसाधारणं चात्मज्ञानोपदेष्टृत्वं चेति। एतच्छास्त्रप्रणेता पतञ्जलिः।

चतुर्विधा वेदान्तिनः

वेदान्तवादिनस्तु चतुर्विधाः — भास्करीयाः, मायावादिनः, शब्दब्रह्मवादिनः, [३]क्रीडाब्रह्मवादिनश्चेति। एतेषु भास्करीयाणां शास्त्रप्रतिपाद्यमानोऽर्थः — जडाजडात्मकसुरनरतिर्यगादिको वस्तुराशिरखिलो [४]लोको ब्रह्मणः परिणामः। एतद् ब्रह्म सच्चिदानन्दात्मकं नित्यं व्यापकं च। एतदेवेश्वरो भवति। अस्य

पातंजल योगशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय यह है—प्रकृति और प्रकृति-जन्य विकारों के साथ आत्मा का सम्पर्क और उसका विच्छेद ही यहाँ बन्ध और मोक्ष के नाम से अभिप्रेत है। प्रकृति और पुरुष का विवेक-ज्ञान कराने में ही योगशास्त्र और उसके यम-नियम आदि अंगों का उपयोग माना गया है। यहाँ छब्बीसवाँ तत्त्व ईश्वर एक ही है। यह सामान्य आत्माओं से भिन्न इसलिये है कि यह स्वतन्त्र है और इस जगत् का निर्माण यही करता है। कैवल्य का, वस्तुओं के सामान्य स्वरूप का और आत्मज्ञान का भी उपदेश यही करता है। इस शास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं।

वेदान्तवादी चार प्रकार के हैं — भास्करीय, मायावादी, शब्दब्रह्मवादी और क्रीडाब्रह्मवादी। इनमें से भास्कराचार्य के द्वारा व्याख्यात वेदान्तशास्त्र में बताया गया है कि यह चराचरात्मक, देव, मनुष्य, पशु, पक्षीस्वरूप तथा समस्त पदार्थ-स्वरूप यह सारा जगत् ब्रह्म का परिणाम है। यह ब्रह्म सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, नित्य और व्यापक है। यह ब्रह्म ही ईश्वर बन जाता है। इसके वास्तविक स्वरूप को न समझ पाने के कारण ही ब्रह्म के विकार के रूप में यह जगत् परिणत हो जाता है। विकारों की पृथक् सत्ता न होने के कारण यह ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ सत्य है। वेदान्त के ज्ञान से शरीर से

---

१. स्व(स्त)रिति—क.ग.। २. एकैकस्यात्मभ्यो—क.। ३. कोट—क.। ४. 'लोको' नास्ति—ख.ग.।

विकारत्वस्याज्ञानात् परिवर्तते संसारोऽयम्। एक एव परमार्थतः सत्यम्, अस्य विकाराणां च विकारत्वात्। वेदान्तज्ञानेन च शरीरव्यतिरिक्तमात्म[१]स्वरूपं भासते। तत्तत् परब्रह्मैवेति वेदनेन[२] तल्लयो मोक्ष इति च प्रतिपादयन्ति।

मायावादिनस्तु पूर्वोक्तं परब्रह्मैव परमार्थतः सत्यम्, दृश्योऽन्योऽखिलांशोऽसत्यः, शुक्तिकायां रजतवत्। जगदुपादानं मायेयं ब्रह्मवत् सत्या च न भवति, [३]शशविषाणवदसत्या च न भवति। मायाया विलक्षणं ब्रह्मस्वरूपम्, वेदान्तज्ञानेन स्वयमिति वेदनं मोक्ष इति प्रतिपादयन्ति।

भिन्न आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है। यह सब कुछ परब्रह्म ही है, इस प्रकार के ज्ञान का उदय होने पर प्रपंच का विलय हो जाना ही वास्तव में मोक्ष है। भास्करीय वेदान्त में ये ही विषय प्रतिपादित हैं।

मायावादी वेदान्तियों के अनुसार ऊपर बताया गया परब्रह्म ही परमार्थतः सत्य है। उससे भिन्न जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह सब उसी तरह से असत्य है, जैसे कि शुक्ति (सीप) में रजत की प्रतीति। जगत् की उपादानभूत माया ब्रह्म के समान सत्य भी नहीं है और न शशविषाण (खरगोश के सींग) के समान असत्य ही है। इस माया से विलक्षण ब्रह्म का स्वरूप वेदान्त के ज्ञान से इस रूप में अनुभूत होता है कि मैं स्वयं ब्रह्म हूँ। इनके मत में यही मोक्ष है।

[1]शब्दब्रह्मवादी के मत में सबका कारणस्वरूप परब्रह्म प्रमेय (संसार) दशा में शब्दात्मक बन जाता है। जड़ और अजड़स्वरूप यह समस्त वस्तु जगत् इसीका विकार है, इसीलिये नाशवान् है। केवल शब्दात्मक परब्रह्म ही वस्तुतः अविनाशी है। शास्त्र की सहायता से अपने इस स्वरूप को जान लेना ही वास्तव में मोक्ष है। शब्दब्रह्मवादी इसीका प्रतिपादन करते हैं।

---

१. मात्मज्ञानस्व–ख.। २. वेदने–ख.ग.। ३. 'शश··· भवति' नास्ति–क.।

1. ब्रह्मसूत्र में शब्दब्रह्मवाद और क्रीडाब्रह्मवाद का प्रतिपादक कोई भाष्य अथवा व्याख्या आज हमें उपलब्ध नहीं है। इनमें शब्दब्रह्मवाद का प्रतिपादन भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में तथा क्रीडाब्रह्मवाद का प्रत्यभिज्ञादर्शन में मिलता है। संभव है, ग्रन्थकार के सामने ऐसा कोई भाष्य या व्याख्या रही हो।

शब्दब्रह्मवादिनस्तु कारणं [१]परं ब्रह्म प्रमेयदशायां [२]शब्दब्रह्मात्मकं भवति। अस्य विकारो जडाजडात्मकं समस्तवस्तु विनाशि, अविनाशि वस्तुतः शब्दात्मैव तदेवं स्वरूपं भवतीति [३]च वेदनं मोक्ष इति च प्रतिपादयन्ति।

[४]क्रीडाब्रह्मवादिनस्तु पूर्वोक्तं ब्रह्मैवाहम्, अहमेकाकी न भवामि, अहमेवोच्चावचैर्विकारवस्तुभिः सह बहुधा क्रीडामीत्यभिसन्धिना ब्रह्म भवति बहु। तद्वस्तु नित्यं वस्तु स्वयमित्युपलब्धिर्मोक्ष इति च प्रतिपादयन्ति। एतेषां चतुर्णां मतानां प्रणेता व्यासः।

आस्तिकनास्तिकशास्त्राणि

मीमांसक-वैशेषिक-न्याय-सांख्य-पातञ्जल-वेदान्ता इति षट् शास्त्राणि [५]वैदिकानि। एतेषु वेदान्त एवाद्वैतशास्त्रम्। इतराणि पञ्च भेदशास्त्राणि। एतत्षट्कं विना वेदबाह्यानि नास्तिकशास्त्राणि।

क्रीडाब्रह्मवादी के मत में पूर्वोक्त परब्रह्म ही अहंशब्द का वाच्य है। मैं अकेला नहीं रहूँगा, मैं ही नाना प्रकार की वस्तुओं की रचना कर उनके साथ क्रीडा करूँगा। इस अभिप्राय से ब्रह्म ही नाना प्रकार की वस्तुओं की रचना कर उनके साथ क्रीडा करता है। ये नाना प्रकार की क्रीडा के निमित्त निर्मित वस्तुएँ और वह अहंनामक नित्य वस्तु— ये सब वास्तव में स्वयं परब्रह्म ही हैं, ऐसा इनका कहना है। इस क्रीडासिद्धान्त को समझ लेना ही इनके यहाँ मोक्ष है। वेदान्त के इन चारों सिद्धान्तों के मूल प्रवक्ता महर्षि वेदव्यास हैं।

शास्त्रों के वैदिक विभाग के अन्तर्गत [1]मीमांसक, वैशेषिक, नैयायिक, कापिल सांख्य, पातंजल योग और वेदान्त का समावेश किया जाता है। इनमें केवल वेदान्त ही अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक है। अन्य पाँच शास्त्र भेद(द्वैत)वाद के पोषक हैं। इन छः शास्त्रों के अतिरिक्त वेद-बाह्य नास्तिकशास्त्र भी लोक में प्रचलित हैं।

---

१. ब्रह्म परं—क.। २. शब्दात्मकं—क.ग.। ३. 'च' नास्ति—क.ग.। ४. कोट—क.।
५. 'वैदि··· शास्त्राणि' नास्ति—ख.।

1. पहले मीमांसा, वैशेषिक और न्यायदर्शन का वैदिक विभाग में तथा सांख्य, योग और वेदान्त का आध्यात्मिक विभाग में परिगणन किया गया है और यहाँ इन सभी को वैदिक विभाग के अन्तर्गत माना है। इसका अभिप्राय यही लगता है कि ये छः आस्तिक दर्शन हैं, क्योंकि आगे यहीं लोकायत, बौद्ध और जैन नामक तीन दर्शनों की नास्तिक विभाग में गणना की गई है।

लोकायतशास्त्रम्

[१]तानि शास्त्राणि कानीति चेत्, बौद्धमार्हतं लोकायतिकं चेति त्रीणि। एतेषु त्रिषु लोकायतिकशास्त्रेण तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — प्रत्यक्षमात्रं प्रमाणम्। प्रत्यक्षाः पृथिव्यप्तेजोवायवः सत्याः। एतेषां समुदायशरीरमेव आत्मा। देहवृद्ध्या ज्ञानवृद्धिः स्यात्, देहे क्षीणे ज्ञानं क्षीणं स्यादिति च। ईश्वर इति न कश्चित्। दृष्टे सुखदुःखे एव स्वर्गनरकौ। शरीरे नष्टेऽनष्टव्यं किमप्यदृष्टं नास्ति। अत एव शरीरं विनाऽऽत्मेति कश्चिदन्यो न भोक्तेति। लोकायतिकशास्त्रप्रणेता बृहस्पतिः।

बौद्धशास्त्रम्

बौद्धे तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — पृथिवीतत्त्वमारभ्य बुद्धितत्त्वान्तत्रयोविंशतितत्त्वानि सन्ति। एतेषु बुद्धितत्त्वं प्रधानम्। पाञ्चभौतिके शरीरे बुद्धितत्त्वमेवात्मा भवति।

वे शास्त्र कौन-कौन से हैं? वे हैं — बौद्ध, आर्हत (जैन) और लोकायतिक (चार्वाक) नामक तीन शास्त्र। इन तीनों में लोकायतिकशास्त्र का कहना है कि केवल एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। पृथिवी, जल, तेज और वायु नामक चार पदार्थ ही सबको प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं, अतः केवल ये ही सत्य हैं। इन चारों पदार्थों का समुदायस्वरूप यह स्थूल शरीर ही आत्मा है। देह की वृद्धि के साथ ज्ञान में भी वृद्धि होती है और देह के क्षीण होने के साथ ज्ञान भी क्षीण होता जाता है। ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है। इस संसार में प्रतीत हो रहे सुख-दुःख ही वास्तव में स्वर्ग और नरक हैं। शरीर के नाश के साथ ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। अदृष्ट नाम की भी कोई वस्तु यहाँ मान्य नहीं है। इसलिये शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई आत्मा भोक्ता के रूप में यहाँ स्वीकार्य नहीं है। इस लोकायतशास्त्र के प्रणेता आचार्य बृहस्पति हैं।

बौद्धों ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन इस तरह से किया है — पृथिवी से लेकर [1]बुद्धि पर्यन्त तेईस तत्त्व है। इनमें बुद्धितत्त्व प्रधान है। इस पांचभौतिक शरीर में बुद्धितत्त्व

---

१. *'तानि शास्त्राणि' नास्ति–क.।*

1. विज्ञानवादी बौद्धों के विज्ञान को बुद्धिगत धर्म मानकर यह विवरण दिया गया है। वस्तुतः बौद्धों ने और जैनों ने भी कहीं भी सांख्यसंमत तत्त्वों की प्रक्रिया को स्वीकार नहीं किया है। ग्रन्थकार का यह विवरण शैवागमों की उस प्रक्रिया का अनुसरण करता है, जहाँ बौद्ध दर्शन की पहुँच बुद्धितत्त्व तक तथा आर्हत दर्शन की पहुँच गुणतत्त्व तक मानी गई है। स्वच्छन्दतन्त्र (११.६८) देखिये।

तदेव प्रधानम्। एतद् बुद्धितत्त्वमारभ्यार्वाग् वस्तुराशिरखिलः क्षणिकः। अन्यथा स्थिर आत्मा च ईश्वरश्च—इत्येतदुभयं नास्ति। एतच्छास्त्रोपदेष्टा सुगत एव। उपास्यमोक्षस्तु जलप्रवाहवन्नित्यानुभूयमानज्ञानसन्ततिः। दुःखसुखस्पर्शं विना शुद्धचित्सन्ततिरेव स्यादिति केचित्। [१]क्रमात् क्रमात् प्रवर्तमानो दीपः क्षीणयोस्तैलवर्त्योर्यथा नश्यति, [२]तथा ज्ञानसन्ततिनाश एव मोक्ष इति केचित्। एते सौत्रान्तिक-वैभाषिक-महायानिक-माध्यमिका इति चतुर्विधा भवन्ति। एतेषु केचित् प्रत्यक्षोऽखिलो वस्तुराशिरसत्यः, ज्ञानसन्ततिरेव सत्येति। केचिदयमखिलो वस्तुराशिरस्ति, अपितु क्षणिक इति च।

ही आत्मा है। यही प्रधान भी है। इस बुद्धितत्त्व से प्रारंभ कर नीचे की सभी वस्तुएँ क्षणिक हैं। इससे भिन्न स्थिर आत्मा अथवा ईश्वर की कोई स्थिति नहीं है। इस शास्त्र के उपदेष्टा सुगत (बुद्ध) हैं। उपास्य (प्राप्तव्य) मोक्ष की स्थिति जल के प्रवाह के समान सतत अनुभूयमान ज्ञानसन्तति ही है। अन्य आचार्यों का कहना है कि सुख-दुःख आदि के स्पर्श से रहित शुद्ध चित्सन्तति ही मोक्ष (निर्वाण) है। दीपक की लौ एक के बाद दूसरी निरन्तर जलती रहती है, किन्तु तैल और बत्ती के क्षीण हो जाने पर जैसे दीपक बुझ जाता है, उसी तरह से ज्ञान की सन्तति का नाश ही अन्य आचार्यों के मत से मोक्ष है। बौद्ध सौत्रान्तिक, वैभाषिक, [1]महायानिक और माध्यमिक के भेद से चार प्रकार के हैं। इनमें से कुछ विद्वानों का मत है कि प्रत्यक्ष प्रतीत हो रही समस्त वस्तुराशि असत्य है। केवल ज्ञानसन्तति ही सत्य है, ऐसा अन्य कुछ आचार्यों का विचार है। अन्य कुछ विद्वान् कहते हैं कि समस्त वस्तुराशि की स्थिति क्षणिक है।

---

१. *'क्रमात्' नास्ति—ग., आत्मा—ख.। २. तद्वत्—ख.ग.।*

1. ब्रह्मसूत्रभाष्य (१.४.२५) में भास्कर ने भी मायावादी महायानिक बौद्ध का उल्लेख किया है, किन्तु बौद्धों के चार भेदों में तृतीय स्थान पर सर्वत्र विज्ञानवादी योगाचारों का ही उल्लेख मिलता है। बौद्धों के इन चारों प्रस्थानों के संक्षिप्त परिचय के लिये सायणमाधव के सर्वदर्शनसंग्रह का बौद्ध दर्शन प्रकरण देखिये—"ते च माध्यमिक-योगाचार-सौत्रान्तिक-वैभाषिकसंज्ञाभिः प्रसिद्धा बौद्धा यथाक्रमं सर्वशून्यत्व-बाह्यार्थशून्यत्व-बाह्यार्थानुमेयत्व-बाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते" (पृ.७)। प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया विवरण अधूरा है।

आर्हतशास्त्रम्

अथार्हतैस्तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — आर्हतशास्त्रप्रणेताऽर्हन्नत्रानादिसिद्धः। जीव इति कोऽपि पदार्थोऽनादिदोषसहितो वर्तते। अयं जीवः स्थूलदेहे क्षीणे क्षीणो वृद्धे वृद्ध इति च। अन्यानीन्द्रियाण्यपि सन्ति च। एतत्सर्वं नाम हिंसाऽहिंसेति वा अस्ति नास्ति काय इति शब्देन वक्तव्यम्। आर्हदुक्तशास्त्रोक्तज्ञानेन चैतच्छास्त्रोक्ततप्तशिलाशयनादितपोभिश्च जीवानां हिंसादयो दोषाः क्षीयन्ते। एवमर्हन्निव क्षीणदोषो भवेदिति च। एतानि शास्त्राणि, एते पदार्थाः सन्ति न सन्ति वेति पृच्छ्यमाने — अस्ति [१]च, नास्ति च, अस्ति नास्तीति च त्रिविधेन उच्यते[२] इति च। एतत्त्रयं[३] वेदबाह्यम्। ईश्वर इत्येकोऽनादिगतो न इति च। ते आचाररहिता नास्तिका उच्यन्ते।

---

[1]आर्हतों (जैनों) का कहना है कि आर्हतशास्त्र के प्रणेता अर्हन्त अनादिसिद्ध हैं। जीव नाम का पदार्थ अनादिकाल से चले आ रहे दोषों से घिरा हुआ है। यह जीव स्थूल देह के क्षीण होने पर स्वयं क्षीण हो जाता है और उसके बढ़ने पर स्वयं भी बढ़ता रहता है। इससे भिन्न इन्द्रियों की भी स्थिति है। यह सब कुछ हिंसा, अहिंसा अथवा अस्तिकाय, नास्तिकाय आदि शब्दों से कहा जाता है। आर्हतशास्त्र के अनुसार ज्ञान से तथा इस शास्त्र में वर्णित तपती हुई शिला पर शयन जैसे कठोर तप के अनुष्ठान से जीवों के हिंसा आदि दोष क्षीण हो जाते हैं। इस तरह से सारे दोषों के क्षीण हो जाने पर जीव अर्हत् के समान हो जाता है। आपके इन शास्त्रों की और उनके द्वारा उपदिष्ट पदार्थों की स्थिति कैसी है? ऐसा पूछने पर वे ये सब हैं, नहीं हैं और होते हुए भी नहीं हैं, इस तरह से त्रिविध[2] रूप में उनका वर्णन करते हैं। लोकायतिक, बौद्ध और जैन — ये तीनों मत वेदबाह्य माने गये हैं। इनमें से कोई ईश्वर को नहीं मानता। आचार से रहित होने के कारण इनको [3]नास्तिक कहा जाता है।

---

१. 'च' नास्ति–क.। २. उच्यन्ते–क.। ३. 'एतत्… उच्यन्ते' नास्ति–ख.।

1. जैनमत के विशिष्ट एवं संक्षिप्त परिचय के लिये भी उपर्युक्त ग्रन्थ का जैन दर्शन प्रकरण देखिये (पृ.२५-३३, आनन्दाश्रम, पूना संस्करण)।
2. यहाँ के त्रिभंगीनय के स्थान पर उक्त ग्रन्थ में सप्तभंगीनय प्रतिपादित है (पृ.३३-३४)।
3. नास्तिकता के प्रयोजक तीन तत्त्वों का यहाँ उल्लेख किया गया है — १. वेदानङ्गीकर्तृत्व, २. ईश्वरानङ्गीकर्तृत्व और ३. आचाररहितत्व। नास्तिकता के ये तीनों लक्षण लोकायत, बौद्ध और जैन दर्शन में विद्यमान हैं। आचारपद से वैदिक आचार गृहीत होगा। पाणिनि (४.४.६०) की परिभाषा के अनुसार तो नास्तिक विभाग में केवल लोकायत (चार्वाक) का ही समावेश होगा।

वैदिकशास्त्राणि षट्

वैदिकशास्त्राणि षट्। तेषामुत्पत्तिभूर् ऋग्यजुःसामाथर्वाण इति वेदाश्चत्वारः। [१]एतेषामङ्गानि छन्दोविचिति-कल्प-शिक्षा-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतींषीति षट्। मन्त्ररूपेण ब्राह्मणरूपेण, विधिदोषे(रूपे)ण च ब्राह्मणादिवर्णधर्माणां ब्रह्मचर्याद्या[२]श्रमधर्माणां प्रतिपादनं च, उपनिषद्भागैः प्रकृतिपुरुषेश्वरप्रतिपादनं च वेदानां[३] प्रमेयार्थाः। एवं वेदसिद्धाचारस्य [४]प्रवर्तकाः, शौचादिव्यवहारस्य प्रायश्चित्तस्य च नियामका मन्वादिधर्मशास्त्राण्यष्टादश। एतेषां प्रणेतारो मन्वादयो [५]महर्षयः।

पाञ्चरात्रशास्त्रम्

वासुदेवप्रणीतपाञ्चरात्रेण तु[६] प्रतिपाद्यमानोऽर्थः—प्रोक्तचतुर्विंशतितत्त्वगुण-तत्त्वोपरि पञ्चविंशतितत्त्वं[७] वासुदेव इत्याख्यम्। न किमपि परतत्त्वमेतस्मात्

ऊपर बताये गये मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, पातंजल योग और वेदान्त नामक छः शास्त्र वेदानुवर्ती हैं। इनकी उत्पत्ति ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक चार वेदों से हुई हैं। वेदों के छन्दोविचिति, कल्प, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त और ज्यौतिष नामक छः अंग हैं। मन्त्र, ब्राह्मण और विधि के रूप में वेदों में ब्राह्मण आदि चार वर्णों के धर्मों का और ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों का प्रतिपादन हुआ है। वेदों के उपनिषद्-भाग प्रकृति, पुरुष और ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं। वेदों में मुख्य रूप से इन्हीं प्रमेयों का प्रतिपादन किया गया है। वेदों के द्वारा संक्षेप में प्रतिपादित आचारों का, आशौच आदि व्यवहारों का और प्रायश्चित्त आदि कर्मों का नियमन मनु आदि के द्वारा रचित [1]अठारह स्मृतियों में विस्तार से किया गया है। इनके रचयिता मनु, याज्ञवल्क्य आदि अठारह महर्षि हैं।

वासुदेव द्वारा प्रणीत पांचरात्रशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है — ऊपर बताये गये चौबीसवें गुणतत्त्व के ऊपर पचीसवाँ तत्त्व वासुदेव के नाम से वर्णित परतत्त्व

---

१. तेषां–क.। २. श्रमाणां–ख.ग.। ३. 'वेदानां' नास्ति–क.। ४. प्रतिपत्तिका–ग.। ५. ऋषयः–क.। ६. 'तु' नास्ति–ग.। ७. 'तत्त्वम्' नास्ति–क.।

1. परिशिष्ट में प्रकाशित प्रस्थानभेद (पृ.४८-५०) में स्मृतियों, पुराणों और उपपुराणों के नाम देखे जा सकते हैं।

परतत्त्वात्। कृष्ण-अनिरुद्ध-मकरध्वज-रौहिणेया इति चत्वारो व्यूहा जगत्सृष्ट्यर्थ-मुत्पद्यन्ते। एतैश्चतुर्भिर्जडाजडात्मकं वस्तु समस्तं सृज्यत इति च। वेदान्तेषु परिणामवादिभिरुक्तवदखिलं वासुदेव इति च। वेदेषु पुरुषार्थो नास्ति, पाञ्चरात्रेषु पुरुषार्थाः सन्ति। अतः पाञ्चरात्रोक्तक्रमेण दीक्षयित्वा वासुदेवं समाराध्य वासुदेवस्वरूपे लयो मोक्ष इति च।

इतिहासपुराणानि

इतिहासपुराणैस्तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — वैदिकधर्माणां च सांख्यपातञ्जलप्रतिपाद्यार्थानां च पाञ्चरात्रपाशुपतशैवोक्तार्थानां[१] च सृष्टिसंहारयोश्च वंशानां च मन्वन्तराणां च वंशानुचरितानां च प्रतिपादनं च। इतिहासो महाभारतम्। पुराणान्यष्टादश। एतेषां कर्ता वेदव्यासः। पञ्चविंशतितत्त्वमात्मेति पदार्थः। दीक्षया मुक्तो भवतीति च पुराणानां प्रमेयार्थाः।

है। इस परतत्त्व से [1]कृष्ण, अनिरुद्ध, मकरध्वज (प्रद्युम्न) और रौहिणेय (बलभद्र) नाम के चार व्यूह जगत् की सृष्टि के लिये उत्पन्न होते हैं। इन चार व्यूहों से स्थावर-जंगमात्मक यह सारा जगत् उत्पन्न होता है। परतत्त्व वासुदेव का स्वरूप वेदान्त में परिणामवादियों के द्वारा बताये गये ब्रह्म के जैसा है। [2]वेदों में कोई पुरुषार्थ नहीं है। इन पुरुषार्थों का प्रतिपादन पांचरात्रशास्त्र में किया गया है। अतः पांचरात्रशास्त्र में वर्णित पद्धति से दीक्षा लेकर वासुदेव की आराधना कर साधक का वासुदेव के स्वरूप में लीन हो जाना ही इनके यहाँ मोक्ष है।

महाभारत आदि इतिहास के ग्रन्थों में और पुराणों में प्रतिपादित विषय ये हैं — वैदिक धर्मों का, सांख्य और योग के द्वारा प्रतिपादित विषयों का, पांचरात्र, पाशुपत और शैवशास्त्रों में वर्णित सृष्टिसंहार-प्रक्रिया का वंशों, मन्वन्तरों और वंशानुचरित[3] का निरूपण इनमें किया गया है। इतिहास में महाभारत का और पुराण में अठारह पुराणों

---

१. शैवोक्तानां–क.।

1. पांचरात्र संहिताओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध–ये नाम इसी क्रम से दिये गये हैं। तत्त्वों का परिगणन भी वहाँ भिन्न पद्धति से दिया गया है। अहिर्बुध्न्यसंहिता ५-७ अध्याय देखिये।
2. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य (२.२.४५) से तुलना कीजिये।
3. "पुराणं पञ्चलक्षणम्" का विवरण देते समय पुराणों में बताया गया है कि यहाँ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित का विशेष रूप से प्रतिपादन किया जाता है। वंशानुचरित का विवरण देते हुए श्रीमद्भागवत (१२.७.१६) में बताया गया है कि पुराण प्रतिपादित वंशों में उत्पन्न हुए वंशधरों का विशिष्ट विवरण जिस भाग में होता है, उसे वंशानुचरित कहते हैं।

अतिमार्गत्रये पाशुपतशास्त्रम्

अतिमार्गत्रयमुच्यते। [तत्र] पाशुपतशास्त्रेण तु[१] प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — आत्मानो बहवो व्यापका नित्याः[२] कार्यकारणसंयोग[३]जातास्तु परस्परभिन्नाश्च। एतेषामाणवमलं नास्ति। मायामलेन कार्मपाशेन च सांसारिकाः सुखदुःखान्यनुभवन्ति। वैराग्योत्पत्तौ शास्त्रोक्तक्रमेण दीक्षिते परमेश्वरस्य ज्ञानगुणः संक्रान्तो भवति। पुत्रेषु कुटुम्बधुरं निधाय संन्यासवन्त इव आत्मसु ज्ञानं संक्रमय्य[४] ईश्वरः स्वाधिकारादुपरतो भवति।

का समावेश किया जाता है। इन सबके रचयिता वेदव्यास हैं। इनके मत में पचीसवाँ तत्त्व आत्मा नामक[1] पदार्थ है। दीक्षा के द्वारा वह मुक्त हो जाता है, यही पुराणों का मुख्य विषय है।

अब [2]अतिमार्ग के तीन विभागों का स्वरूप बताया जा रहा है। इनमें से पाशुपतशास्त्र का प्रतिपाद्य यह है — आत्मा असंख्य है। वे व्यापक और नित्य हैं। कार्य और कारण के संयोग के कारण इनमें परस्पर भिन्नता रहती है। आणवमल की इनके यहाँ सत्ता नहीं है। मायामल और कार्ममल से बद्ध होने से सांसारिक जीव सुख और दुःख का अनुभव करते हैं। वैराग्य के उत्पन्न होने पर शास्त्रों में वर्णित क्रम से दीक्षित होने पर जीवात्मा में परमेश्वर के ज्ञान-गुण की संक्रान्ति होती है। पुत्रों के ऊपर कुटुम्ब के भरण-पोषण के भार को डालकर संन्यास ग्रहण करनेवाले व्यक्ति में अपने ज्ञान-गुण को संक्रान्त कर परमेश्वर उसके प्रति अपने [3]अधिकार को समाप्त कर देता है।

---

१. 'तु' नास्ति–ख.ग.। २. 'नित्याः' नास्ति–क.। ३. जात्मज्ञानात्–ख., जातात्मज्ञानात्–ग.। ४. संक्रम्य–क.ख.।

1. इतिहास-पुराण में आत्मा के अतिरिक्त ईश्वर भी प्रतिपादित है।
2. अतिमार्ग विभाग में यहाँ शैवों के चार विभागों में से सिद्धान्तशैव को छोड़ कर अन्य तीन शैव मतों का परिगणन किया गया है। इसकी परीक्षा अपेक्षित है। इन चारों मतों के मोक्षविषयक (शिवसाम्य) विचारों की समीक्षा शैवपरिभाषा (पृ.१५६-१६०) में देखी जा सकती है।
3. अष्टप्रकरण में प्रकाशित परमोक्षनिरासकारिका की टीका में उद्धृत अवधूत सिद्ध के वचन से इसकी तुलना की जा सकती है। जैसे कि–"यथाह व्यासाक्षिण्यां तत्रभवानवधूतः– परमशिवः सिद्धान् प्रत्युपरताधिकारोऽप्यन्येष्वनुपरताधिकारः। सिद्धः पुनरेकान्तेन सर्वत एवोपरताधिकार इति भेदः" (पृ.२८१)।

महाव्रतशास्त्रम्

महाव्रतानां तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — आणवमलेन सह पाशुपतोक्तप्रकारेणैव कार्ममायात्मकबन्धमुक्तानामात्मनां संसारदशायामपि ज्ञानशक्तिरेव, न[१] क्रियाशक्तिः। शास्त्रोक्तक्रमेण दीक्षिता अस्थिधारणादिशास्त्रोक्तचर्यानुष्ठातारो मुक्ता भवन्ति। ते च मुक्ताः केवलं[२] ज्ञानशक्तिमन्त एव। ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिद्वयं तु परमेश्वरस्यैकस्यैवेति।

कापालिकशास्त्रम्

[३]कापालिकानां तु प्रतिपाद्यमानोऽर्थः — पाशुपतमहाव्रतोक्तक्रमेण आत्मलक्षणं बन्धलक्षणं चास्ति। शास्त्रोक्तक्रमेण दीक्षितेन दिने दिने श्यामैकध्वजपताकायां व्याप्तायां मनुष्यकपाल(ले) भिक्षामटित्वा भोक्तव्यमिति च, महाव्रतानामिव मोक्ष

---

[1]महाव्रत-सम्प्रदाय का सिद्धान्त इस प्रकार है—आणव मल के साथ पाशुपत मत द्वारा प्रतिपादित क्रम से ही कार्म और मायीय नामक बन्धनों से मुक्त जीवात्माओं की संसारदशा में भी ज्ञानशक्ति ही रहती है, क्रियाशक्ति नहीं। शास्त्रोक्त विधि से दीक्षा प्राप्त कर ये अपने शास्त्र में उपदिष्ट अस्थिधारण आदि चर्याओं का अनुष्ठान करते हुए मुक्त हो जाते हैं। ये मुक्त जीव भी केवल ज्ञानशक्ति से सम्पन्न होते हैं। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति — इन दोनों शक्तियों से सम्पन्न तो केवल एक ईश्वर ही है।

कापालिक-सम्प्रदाय का प्रतिपाद्य विषय यह है — आत्मा का स्वरूप और बन्ध का क्रम यहाँ पाशुपत और महाव्रत के अनुसार ही है। शास्त्रोक्त क्रम के अनुसार इन्हें प्रतिदिन काले वस्त्र से बनी ध्वज-पताका को हाथ में लेकर मनुष्य के कपाल का भिक्षापात्र बनाकर उसमें भिक्षा माँगकर भोजन करना चाहिये। मोक्ष की स्थिति इनके यहाँ [2]महाव्रतों के समान ही है। पाशुपत, महाव्रत और कापालिकों के शास्त्रों के प्रवक्ता मायातत्त्व और विद्यातत्त्व में निवास करनेवाले तीन रुद्र हैं।

---

१. 'न' नास्ति—क.। २. 'केवलं' नास्ति—क.। ३. कापालानां—ग.।

1. यहाँ महाव्रत शब्द का प्रयोग कालामुख सम्प्रदाय के लिये किया गया है। शैवपरिभाषा (पृ.१५६) और शिवमहापुराण (७.२.३१.७३) में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है, किन्तु जैन हरिभद्र सूरि के षड्दर्शनसमुच्चय की गुणरत्नकृत तर्करहस्यदीपिकाटीका (पृ. ५१) में महाव्रत का प्रयोग कापालिक के लिये किया गया है तथा कालामुख का वहाँ अलग से उल्लेख है।
2. शैवपरिभाषा (पृ.१५६) के अनुसार महाव्रती के मत में शिवसाम्य की उत्पत्ति होती है और कापालिक का मानना है कि मुक्त आत्मा में शिवसाम्य का समावेश होता है।

इति च। पाशुपत-महाव्रत-कापालानां शास्त्राणामतिमार्गाणां वक्तारो मायातत्त्वविद्यातत्त्ववासिनस्त्रयो रुद्राः।

सिद्धान्तशास्त्राणि

अदृष्टशास्त्रभूतसिद्धान्तशास्त्रस्य इह लोके विश्वासजनकं परमेश्वरेण तत्पुरुषाघोरवामदेवसद्योजातनामभिश्चतुर्भिरधोवक्त्रैरनुगृहीतैर्विज्ञानकेवलैरेतदेव तत्संज्ञैश्चतुर्भिरुक्तानि गारुड-दक्षिण-वाम-भूतानीत्यधःस्रोतांसि चत्वारि शास्त्राणि। एतेषां गारुडतन्त्रेण तत्पुरुषं ब्रह्म स्वरूपवद् ध्यात्वा पूजनीयमित्युच्यते। अनेन शास्त्रेण तु प्रत्यक्षं सर्पचिकित्सार्थं मन्त्रौषधविषयाणि चोक्तानि। दक्षिणतन्त्रेषु अघोरं ब्रह्म स्वरूपवद् ध्यात्वा पूजनीयः परमेश्वर इति च, योगेन परमेश्वरः प्रत्यक्षीकार्य इति चोक्तम्। शत्रुजयाय मन्त्रयोगश्च। वामतन्त्रेण वामदेवो ब्रह्मस्वरूपवद् ध्यात्वा पूजनीयः। अनेन शास्त्रेण रसवादाद्युक्तम्[१]। भूततन्त्रेण सद्योजातं ब्रह्मस्वरूपवद् ध्यात्वा परमेश्वरः पूजनीय इत्युक्तम्। भूत-प्रेत-पिशाच-चिकित्सार्थं मन्त्रौषधानि च।

अदृष्ट (पारलौकिक धर्म) का प्रधानतः प्रतिपादन सिद्धान्तशास्त्र में विश्वास जगाने के लिये परमेश्वर ने अपने [1]तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात नामक चार नीचे के मुखों से अनुगृहीत विज्ञानाकल स्थितिवाले चार रुद्रों के द्वारा क्रमशः अधःस्रोतवाले गारुड़, दक्षिण, वाम और भूत तन्त्रों का उपदेश कराया है। इनमें से गारुडतन्त्र में तत्पुरुष को ही ब्रह्म मानकर उसका ध्यान और पूजन किया जाता है। इस शास्त्र में सर्प आदि के विष की चिकित्सा के लिये प्रत्यक्ष प्रभाववाले मन्त्रों और औषधियों का उपदेश किया गया है। दक्षिण तन्त्र के अनुसार अघोरस्वरूप को ही मानकर उसका ध्यान और पूजन किया जाता है। यहाँ बताया गया है कि योग के द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार करना चाहिये। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये यहाँ मन्त्र उपदिष्ट हैं। वामतन्त्र के अनुसार वामदेवस्वरूप को ही ब्रह्म मानकर परमेश्वर के रूप में उसका ध्यान और पूजन किया जाता है। इस शास्त्र में रसवाद आदि उपदिष्ट हैं। भूततन्त्र के अनुसार सद्योजातस्वरूप को ही ब्रह्म मानकर परमेश्वर का ध्यान और पूजन किया जाता है। यहाँ भूत, प्रेत, पिशाच आदि की चिकित्सा के लिये मन्त्र और औषधियाँ उपदिष्ट हैं।

---

१. द्युक्तः –क.ग.।

1. यहाँ पंचमन्त्रतनु पंचमुख भगवान् शिव के पाँच मुखों से निःसृत पंचस्रोतस् शास्त्रों का विवरण दिया गया है। शिव के ऊर्ध्व मुख से निःसृत शास्त्र ऊर्ध्वस्रोतस् तथा नीचे के चार मुखों से निःसृत शास्त्र अधःस्रोतस् कहे गये हैं। कश्मीरी शैवागम ग्रन्थों में इन पाँचों से भिन्न षष्ठ स्रोतस् को अधःशासन अथवा पिचुवक्त्र नाम दिया गया है।

शक्तितत्त्ववासिना केनचिदात्मना शाक्तं तन्त्रमुक्तम्। भास्करीयवेदान्तवादिप्रोक्त-वज्जडाजडमखिलं शक्तिपरिणति[१]रित्युक्ततन्त्रस्याभिमतम्। तान्यधःस्रोतांसि चत्वारि च साक्षात् शिवप्रणीतानि भवन्ति। कौल[२]यामलादिशास्त्राणि मनुष्यैर्मत्स्येन्द्र-नाथादिसिद्धैरुक्तानि।

शास्त्रतारतम्यम्

लोकायतज्ञानिनां पृथिव्यप्तेजोवायूनां चतुर्णां भूतानां ज्ञानेन तत्तदर्वाक्-प्रपञ्चजननं विरमति। आर्हतानां [३]गुणतत्त्वादर्वाक्तत्त्वाज्जन्म विरमति। [४]न्यायवैशेषिक-योर्बुद्धितत्त्वान्तसंसारो विरमति। बौद्धानां बुद्धितत्त्वादर्वाक्तत्त्वाज्जन्म विरमति। सांख्यानां प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकज्ञानेन सत्य(त्त्व)प्रकृतेरुपरि मिश्राध्वविषयस्य तत्त्वज्ञानस्या-संभवादशेषकर्मनाशानुत्पत्तेर्विज्ञानकैवल्यं नास्ति। पाञ्चरात्राणां प्रकृतेरर्वाक् संसारो विरमति। वेदान्तिनां पुरुषतत्त्वप्राप्तिः स्यात्। पौराणिकानां रागतत्त्वप्राप्तिः

शक्तितत्त्व में निवास करनेवाली किसी विशेष आत्मा ने शाक्त तन्त्र का उपदेश किया है। भास्करीय वेदान्त में बताई गई पद्धति के अनुसार यहाँ भी सारा जड़चेतनात्मक जगत् शक्ति का परिणाम है। पंच मन्त्र तनु ईश्वर के नीचे के चार मुखों से उपदिष्ट होने से ऊपर के चारों मत अधःस्रोत के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सब शास्त्र साक्षात् शिव के द्वारा ही प्रणीत हैं। कौल, यामल आदि शास्त्र मत्स्येन्द्रनाथ[1] आदि महापुरुषों के द्वारा उपदिष्ट हैं।

लोकायतशास्त्र को जाननेवालों को पृथिवी, जल, तेज और वायु नामक चार भूतों के ज्ञान से इनसे पहले के प्रपंच (भुवनों) से मुक्ति मिल जाती है। [2]आर्हतों (जैनों) का गुणतत्त्व से नीचे के तत्त्वों (भुवनों) में जन्म नहीं होता। नैयायिकों और वैशेषिकों को बुद्धितत्त्व पर्यन्त संसार से मुक्ति मिल जाती है। बौद्धों को बुद्धितत्त्व

---

१. णीतरीत्योक्त–ख.। २. 'यामल' नास्ति–ख.ग.। ३. गुणत्वा–क., गुणतत्त्वानां–ख.।
४. 'न्याय···जन्म विरमति' नास्ति–ग.।

1. कौल शास्त्र के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं, यह बात तो अभिनवगुप्त, अघोरशिव आदि के वचनों से भी सिद्ध हो जाती है, किन्तु यामलशास्त्र के प्रवर्तक किसी महापुरुष के विषय में हमें अब तक कोई सूचना नहीं मिली है।
2. यह पूरा विवरण शैवागमों की दृष्टि से किया गया है। स्वच्छन्दतन्त्र (११.६८-७४) तथा अन्यत्र भी विभिन्न मतों की मोक्षविषयक स्थिति का अपनी पद्धति से इसी तरह निरूपण किया गया है।

स्यात्। [१]कापालिकानां कलातत्त्वप्राप्तिः स्यात्। पाशुपतानां मायातत्त्वप्राप्तिः स्यात्। महाव्रतिनां[२] विद्यातत्त्वप्राप्तिः स्यात्। स्रोतोऽन्तरगारुड-दक्षिण-वाम-भूततन्त्रेषु [३]दीक्षितानां शक्तितत्त्वस्थितनिवृत्ति-प्रतिष्ठा-विद्या-[४]शान्तिभुवनप्राप्तिः स्यात्। शुद्धशाक्तानां शक्तितत्त्वप्राप्तिः स्यात्। कौलयामलादिशास्त्राणां हिंसामैथुनसङ्गमस्य संभवात् पिशाचादिपदप्राप्तिः स्यात्।

द्विविधं सिद्धान्तशास्त्रम्

सिद्धान्तशास्त्रं तु शिवभेदेन [५]रुद्रभेदेन च द्विविधम्। शिवभेदं तु [६]बिन्दु-शक्तेर्नादबिन्दुप्रणवात्मतया परिणमते। तदनन्तरं मातृका चानुष्टुब्छन्दोनिबद्धप्रणवादीनां

के नीचे के संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। सांख्यों को प्रकृति और पुरुष का विवेकज्ञान हो जाने पर भी, उनके यहाँ प्रकृति के ऊपर स्थित राग आदि मिश्राध्वा के तत्त्वों की कोई स्थिति न होने से सर्वात्मना तत्त्वों का ज्ञान नहीं हो पाता, समस्त कर्मों का नाश नहीं हो पाता। अतः वे विज्ञानकेवली[1] के पद को नहीं प्राप्त कर सकते। पांचरात्रों को प्रकृति के नीचे के तत्त्वों से छुटकारा मिल जाता है। वेदान्तियों को पुरुषतत्त्व की प्राप्ति होती है। पौराणिकों को रागतत्त्व की प्राप्ति होती है। कापालिकों को कलातत्त्व की, पाशुपतों को मायातत्त्व की और महाव्रतों को विद्यातत्त्व की प्राप्ति होती है। शास्त्रों के मान्त्रिक विभाग के अन्तर्गत आनेवाले गारुड़, दक्षिण, वाम और भूततन्त्रनामक विभिन्न स्रोतों में दीक्षित व्यक्तियों को शक्तितत्त्व में स्थित [2]निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्तिनामक भुवनों की प्राप्ति होती है। शुद्ध शाक्तमत का अनुसरण करने वालों को शक्तितत्त्वस्थित भुवनों की तथा कौल, यामल आदि शास्त्रों के अध्येताओं की हिंसा, मैथुन आदि में प्रवृत्ति रहने से वे पिशाच आदि योनियों में जन्म लेते हैं।

सिद्धान्तशास्त्र [3]शिवभेद और रुद्रभेद से दो प्रकार का है। शिवभेद बिन्दुशक्ति से नाद, बिन्दु और प्रणव के रूप में परिणत होता है। इसके बाद मातृका, अनुष्टुप्

---

१. कापालानां–ख.ग.। २. व्रतानां–ख.ग.। ३. 'दीक्षितानां' नास्ति–क.। ४. शक्ति–क.ख.। ५. 'रुद्रभेदेन' नास्ति–क.। ६. बीज–ग.।

1. केवली शब्द का प्रयोग जैनशास्त्रों में भी मिलता है।
2. पृष्ठ १५ की तीसरी टिप्पणी तथा प्रस्तावना (पृ. xx) देखिये।
3. सिद्धान्तशैवागमों के अन्तर्गत दस शिवभेदों का, अठारह रुद्रभेदों का तथा उनके प्रवक्ता प्रणव आदि का, विजय आदि का तथा उनके शिष्यों का विवरण देने वाले किरणागम के वचनों का संग्रह लुप्तागम० (भा.१, पृ.१७–१९) में किया गया है। अब किरणागम का विद्यापाद रोमन लिपि में छप गया है। ये सभी वचन वहाँ दसवें तन्त्रावतार पटल में देखे जा सकते हैं।

मायोक्तविधौ विज्ञानकलाख्यानां परमेश्वरेणानुगृहीतानां [१]दशशिवानां कामिकादिकं ज्ञानं शब्दात्मकं सद्योजातवामदेवमुखाभ्यां प्रोक्तानि शैवानि शास्त्राणि दश च[२]। एवं परमेश्वरोपदिष्टज्ञानानामष्टादशरुद्राणामघोरतत्पुरुषेशानमुखैः श्रीविजयादिसंज्ञया प्रोक्तानि रुद्रभेदादष्टा[३]दशशास्त्राणि च। एवमष्टाविंशतिशास्त्राणामेकैककोटिसंख्ययाऽ-ष्टाविंशतिकोटिग्रन्थाः। एतेषामष्टाविंशतिशास्त्राणां सिद्धान्त इति नाम।

ज्ञानपादविषयाः

एतानि प्रत्येकं ज्ञान-क्रिया-योग-चर्याभिश्चतुष्पादानि। एतेषां ज्ञानपादेन तु परमेश्वरस्य[४] स्वरूपं च, विज्ञानाकल-प्रलयाकल-सकलानामात्मनां स्वरूपं च, आणव-कार्म-माया-बैन्दव-रोधशक्त्यात्मकपाशस्वरूपं च, शक्तिस्वरूपं च, शिवतत्त्वमारभ्य पृथ्वीतत्त्वान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वानां सृष्टिप्रकारश्च, एतैरात्मनां भोग-[५]साधनैर्भवितव्यं च, भुवनानां भुवनेश्वराणां स्वरूपं च[६], भुवनानां योजनान्ये[७]तावन्ति

छन्द आदि के रूप में निबद्ध होकर मायापद में विज्ञानाकल के रूप में स्थित प्रणव आदि दस शिवों को कामिक आदि दस आगमों के रूप में सद्योजात और वामदेव मुख से उपदिष्ट दस शैवागमों का शब्दात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। इसी तरह से परमेश्वर के द्वारा उपदिष्ट विजय आदि संज्ञा (नाम) वाले अठारह रुद्रों को अघोर, तत्पुरुष और ईशान मुख से निर्गत विजय आदि अठारह शास्त्रों का उपदेश प्राप्त होता है। इन अट्ठाईस आगमों में से प्रत्येक एक करोड़ श्लोकप्रमाण का है। इस तरह से इन सब आगमों का आकार अट्ठाईस करोड़ श्लोकप्रमाण हैं। इन अट्ठाईस आगमों की [1]सिद्धान्तशास्त्र के रूप में प्रसिद्धि है।

इन सिद्धान्त नामवाले सभी आगमों में ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यानामक चार पाद होते हैं। इनमें से ज्ञानपाद में परमेश्वर के स्वरूप का, विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकलनामक आत्माओं (पशुओं) के स्वरूप का; आणव, कार्म, माया, बैन्दव और रोधशक्तिनामक पाँच पाशों का, भक्ति के स्वरूप का; तथा शिवतत्त्व से

---

१. 'दशशिवानां' नास्ति–ख.। २. 'च' नास्ति–क.। ३. दानीत्यष्टा–क.। ४. श्वरस्वरूपं–ख, श्वरस्य रूपं–ग.। ५. साधकैः–क.। ६. इतः परं 'परमेश्वराणामुमामहेश्वरादिव्यक्तलिङ्गलक्षणं च स्कन्दनन्द्याद्यारभ्य' इत्यधिकः पाठोऽत्रानावश्यकः। सोऽयं चर्यापादेऽवलोकनीयः। ७. 'एता··· णानि च' नास्ति–क.।

1. अघोर शिवाचार्य की यह उक्ति इस विषय में अवधेय है– "सिद्धान्तशब्दः पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः"(अ० प्र०, पृ.१४९)।

परिमाणानि च, [१]अधःप्रलय-मध्यप्रलय-महाप्रलयानां स्वरूपं च, तत्प्रलयानन्तरं सृष्टेः प्रकारश्च, पाशुपत-महाव्रत-कापालशास्त्रवचनं च, तत्त्वं च, प्रोक्तार्थं पूर्वपक्षी[२]कृत्य प्रमेयनियमश्च प्रोच्यन्ते।

क्रियापादविषयाः

क्रियापादेन तु मन्त्रोद्धार-सन्ध्यावन्दन-पूजन-जप-होमाश्च, समयविशेष-निर्वाणसंस्कार-आचार्याभिषेका[३]त्मनाऽऽत्मनां भोगमोक्षोपायभूता दीक्षा च प्रोच्यन्ते।

योगपादविषयाः

योगपादेन त्वेतानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानि च, तत्त्वेश्वराश्च, आत्मा च, परमेश्वरश्च, शक्तिश्च, जगत्कारणभूतमायामहामाययोः प्रत्यक्ष[४]प्रभावश्च, विषयतत्त्वसिद्ध्य-

---

लेकर पृथ्वीतत्त्व पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों की सृष्टि के प्रकार का वर्णन मिलता है। यहाँ यह भी बताया गया है कि ये सभी आत्माओं के भोगों के साधन हैं। भुवनों और भुवनेश्वरों का स्वरूप भी यहाँ बताया गया है। किस भुवन का प्रमाण कितने योजन का है, यह भी यहाँ वर्णित है। अधःप्रलय, मध्यमप्रलय और महाप्रलय का स्वरूप और उन-उन प्रलयों के बाद होनेवाली सृष्टि का प्रकार भी यहाँ बताया गया है। [1]पाशुपत, महाव्रत और कापालिक शास्त्रों में प्रतिपादित तत्त्वों का स्वरूप भी प्रसंगवश पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित है। इसके साथ ही प्रमेय पदार्थ का नियमन भी यहाँ किया गया है।

क्रियापाद में मन्त्रोद्धार, सन्ध्यावन्दन, पूजन, जप और होम का स्वरूप प्रदर्शित है। नाना प्रकार के समयों (नियमों) का, निर्वाण आदि संस्कारों (दीक्षाओं) का, आचार्य आदि के अभिषेकों का भी वर्णन यहाँ किया गया है। साथ ही यहाँ भोग और मोक्ष के उपाय के रूप में विविध दीक्षाओं का भी वर्णन किया गया है।

योगपाद में ऊपर बताये गये छत्तीस तत्त्वों का, इन तत्त्वों के अधिपतियों का, आत्मा, परमेश्वर और शक्ति का, जगत् की कारणभूत माया और महामाया के प्रत्यक्ष

---

१. 'अधः' नास्ति–ख.ग.। २. पूर्ववत् कृत्वा–ख., वक्तृत्व–ग.। ३. काश्चात्मनां–क.। ४. 'प्र' नास्ति–ख.।

1. शैवागमों के चार भेद प्रसिद्ध हैं। यहाँ सिद्धान्तशैवागम के अतिरिक्त तीन भेदों को अतिमार्ग बताया गया है। लगता है, सिद्धान्तशैवागमों के मत में ये ही तीन मत उनके प्रधान प्रतिद्वन्द्वी हैं। "प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः सिद्धान्तक्रममाश्रितः" (स्वच्छन्दो० २.२५) क्षेमराज की इस उक्ति से भी सिद्धान्तशास्त्र की लोकप्रियता सिद्ध होती है। वामनपुराण (६.८६-९१) में इन चारों मतों को चार वर्णों से जोड़कर सभी मतों को मान्यता दी गई है।

पेक्षाणामणिमादिसिद्धीनां संभवश्च, प्राणायाम-प्रत्याहार-[१]ध्यान-धारणा-जप-समाधि-प्रकारश्च, मूला[२]धाराद्याधाराणामवस्थानं च प्रोच्यन्ते।

चर्यापादविषयाः

चर्यापादेन तु प्रायश्चित्त-पवित्रारोपणप्रतिपादनं च, शिवलिङ्गलक्षणं च, उमामहेश्वरादि[३]व्यक्तलिङ्गलक्षणं च, स्कन्दनन्द्यादिगणेश्वरलक्षणं च, जपमाला-योगपट्ट-दण्ड-कमण्डल्वादिलक्षणं च, अन्त्येष्टिश्राद्धानि च प्रोच्यन्ते।

प्रभाव का, सूक्ष्म विषयों और तत्त्वों के साक्षात्कार के लिये अपेक्षित अणिमा आदि सिद्धियों का, [1]प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, जप और समाधि के प्रकारों का तथा मूलाधार आदि आधारों की शरीर में स्थिति का भी विवरण दिया गया है।

चर्यापाद में प्रायश्चित्तों का और [2]पवित्रारोपण-विधि का, शिवलिंग के लक्षणों का, उमा-महेश्वर आदि के व्यक्त लिंग के लक्षणों का, स्कन्द, नन्दी, गणेश्वर आदि के लक्षणों का, जपमाला, योगपट्ट, दण्ड, कमण्डलु आदि के लक्षणों का और अन्त्येष्टि श्राद्ध आदि का वर्णन किया गया है।

---

१. धारणाध्यान – ख.ग.। २. धारध्यानादुद्धारणमनुरवस्था – क.। ३. व्यक्ताव्यक्त – क.।

1. योग के छः अंगों का ही यहाँ निरूपण किया गया है। यहाँ ऊह या तर्क को छोड़कर उसके स्थान पर जप का समावेश किया गया है। पाशुपत-मत में जप को क्रियालक्षण योग का एक अंग माना गया है। पाशुपत-सूत्रकार (पृ.२१.२३) का कहना है कि मन्त्र के पाठ से और ॐकार में ध्यान और धारणा को स्थिर करने पर साधक योगी निष्ठायोग की सहायता से रुद्र के सायुज्य को प्राप्त करता है। योगसूत्रकार (१.२७-२८) भी प्रणव-जप की महिमा को गाते हैं। जप की योगांगता वैष्णव और शैव आगमों में भी वर्णित है। जयाख्यसंहिता (३३.११) के योगाख्यान पटल में और मृगेन्द्रागम के योगपाद (श्लो. ३) में इसको देखा जा सकता है। वाचिक, उपांशु और मानस नामक विविध जप का तो निरूपण सर्वत्र मिलता है, किन्तु लक्ष्मीतन्त्र (३९.३५) में जप का ध्यानात्मक चौथा प्रकार भी दिखाया गया है। सात्वतसंहिता के भाष्य (पृ.८५, ११५) में भी यह विषय देखा जा सकता है। ऐसा लगता है कि जप की योगांगता का सर्वप्रथम निरूपण पाशुपत-मत में किया गया। पाशुपत व्रत के शिवपुराण वायवीयसंहिता (१.३२.३) में क्रिया, तप, जप, ध्यान और दाननामक पाँच अंग वर्णित हैं। वीरशैव आगमों में और सिद्धान्तशिखामणि (९.२२-२४) में शिवपंचयज्ञ के रूप में इनका वर्णन है। ध्यान देने की बात है कि यहाँ भी जप का समावेश किया गया है।
2. पवित्रारोपण का विधान शैवागमों में ही नहीं, वैष्णवागम और शाक्तागमों में भी मिलता है। कर्मकाण्डक्रमावलि के लेखक सोमशम्भु का कहना है– "सर्वपूजाविधिच्छिद्रपूरणाय पवित्रकम्" (पृ. ४१)। वैष्णवाचार्य वल्लभ के अनुयायी श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन आज भी भगवान् को पवित्रार्पण करते हैं।

विविधपदप्राप्तिः

समयसंस्कारेण तु [१]रुद्रपदप्राप्तिः स्यात्। विशेषसंस्कारेण तु ईश्वरपदप्राप्तिः स्यात्। अत्र रुद्रपदप्राप्तिर्नाम गुणमस्तकस्थरुद्रस्य पदप्राप्तिरेव। ईश्वरपदप्राप्तिर्नाम प्रकृतितत्त्वादुपरि मिश्राध्वनि प्रथमतत्त्वभूतरागतत्त्वप्राप्तिरेव। ईश्वरे[२]णानन्तेश्वरेणाधिष्ठितत्वात् तत्तत्त्वप्राप्तिरीश्वरपदप्राप्तिः स्यात्। सांख्य-पातञ्जल-वेदान्त-पाञ्चरात्रोक्तमार्गादुपरि निर्वाणदीक्षया परमेश्वरसाम्यरूपं मोक्षं प्राप्नुवन्ति।

विविधा दीक्षाः

अथ निर्वाणदीक्षाक्रिया[३] सद्योनिर्वाणाऽसद्योनिर्वाणभेदेन द्विविधा। तत्र सद्योनिर्वाणदीक्षाक्रियायाः समनन्तरकालमेव शरीरं विहाय मोक्षं प्राप्नुवन्ति। असद्योनिर्वाणदीक्षया दीक्षाकाले भूतानि भविष्यन्ति च[४] कर्माणि संशोध्य तदानीं भुज्यमानस्य शरीरहेतुभूतस्य वर्तमानकर्मणः शुद्धिकरणादायुःक्षये शरीरत्यागेन

समय संस्कार (सामान्य दीक्षा) से रुद्रपद की और विशेष संस्कार से ईश्वरपद की प्राप्ति होती है। यही रुद्रपद की प्राप्ति का अर्थ [1]गुणों के मस्तक पर स्थित रुद्र के पद की प्राप्ति से है और ईश्वरपद की प्राप्ति का अर्थ है प्रकृतितत्त्व से ऊपर मिश्राध्वा में विद्यमान प्रथम तत्त्व राग में स्थित भुवनों की प्राप्ति। ईश्वर, अर्थात् अनन्तेश्वर के द्वारा अधिष्ठित होने से उस तत्त्व की प्राप्ति ही ईश्वरपद की प्राप्ति कही जाती है। सांख्य, पातंजल, वेदान्त और पांचरात्र-आगम में उपदिष्ट मार्ग के ऊपर निर्वाण-दीक्षा में दीक्षित व्यक्ति को परमेश्वर की [2]समतारूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

---

१. 'रुद्र ... तु' नास्ति–ग.। २. राधिष्ठिततत्त्वात्मकत्वप्राप्ति–ख., ईश्वरेणाधिष्ठितत्वात्–ग.। ३. 'क्रिया' नास्ति–क.ख.। ४. 'च' नास्ति–ख.ग.।

1. गुणमस्तकस्थित रुद्रों से अभिप्राय है, गुणतत्त्व के भुवनों के अधिपति रुद्र। इस प्रकरण में सर्वत्र तत्त्व शब्द से तत् तत् तत्त्वों में स्थित भुवनों के अधिपतियों का ग्रहण करना चाहिये।
2. शैवागमों में शिवसमता को मोक्ष माना गया है। यह शिवसमता कैसे प्राप्त होती है? इस विषय में चारों प्रकार के शैवों में मतभेद है। अष्टप्रकरणस्थित सद्योज्योति शिवाचार्य की परमोक्षनिरासकारिका और रामकण्ठकृत व्याख्या में इसको देखा जा सकता है। शैवपरिभाषा में शिवसाम्यविषयक उत्पत्ति, संक्रान्ति, समावेश और अभिव्यक्तिनामक चार पक्षों का निरूपण संक्षेप में देखा जा सकता है (पृ.१५६-१५७)।

मोक्षं प्राप्नुवन्ति। [१]साधकदीक्षया शिवभक्तिशिवलिङ्गार्चनयोः सतोरपि पश्चाद् विद्येश्वरादिपदाभिलाषिणस्तत्पदं प्राप्नुवन्ति[२]। तत्पदस्थानां मध्ये [३]विरक्तास्तदानीमेव मुक्ता भवन्ति। नो चेत्, महासंहारकाले मुक्ता भवन्ति। निर्बीजदीक्षा तु तद्दीक्षोत्तरकालेऽनुष्ठेयानां सन्ध्यावन्दनशिवलिङ्गार्चनादीनां दीक्षाकाल एवाचार्येण संशोध्यानुष्ठितत्वात् स्त्रीबालवृद्धव्याधिभोगरता[४]ज्ञानां विधेया। सबीजदीक्षा तु समर्थानां समयिपुत्रकसाधकाचार्याणां विधेया। तद्दीक्षया भूतभविष्यद्रूपाणि द्विविधानि कर्माणि च[५], [६]एतत्परिपाकप्राप्तान्यशेषशरीराणि च, शरीराभावेन भोगाश्च विनश्यन्ति। शरीरकारणभूतानां कर्मणां शुद्धिकारकशरीराणि सुखदुःखान्यनुभवितव्यान्येव। [७]इत्थं त्रिविधानि कर्माणि विनश्यन्ति।

यह निर्वाण-दीक्षा [1]सद्योनिर्वाण और असद्योनिर्वाण के भेद से दो प्रकार की है। इसमें सद्योजात दीक्षा के तुरन्त बाद साधक मुक्त हो जाता है। असद्योजात निर्वाण-दीक्षा में दीक्षा के समय भूत और भविष्य के सभी कर्मों का शोधन किया जाता है। उस समय भुज्यमान शरीर के कारणीभूत वर्तमान कर्मों की शुद्धि होने पर साधक की आयु समाप्त हो जाती है, तब इस देह का पात हो जाने पर मुक्ति मिलती है। साधक-दीक्षा में शिवभक्ति और शिवलिंग का पूजन करते रहने पर विद्येश्वर आदि पदों के अभिलाषियों को अपने अभीप्सित पदों की प्राप्ति होती है। इन पदों में रहनेवालों के बीच कुछ विरक्त स्वभाव के साधक तुरन्त मुक्त हो जाते हैं। ऐसा न होने पर बचे साधक संहारकाल में मुक्त होते हैं। निर्बीजदीक्षा उनकी की जाती है, जो कि दीक्षा के बाद अनुष्ठेय सन्ध्यावन्दन, शिवलिंग-पूजन आदि के करने में असमर्थ हैं। ऐसे व्यक्तियों को आचार्य दीक्षा के समय ही इन कर्मों के अनुष्ठान से छुटकारा दिला देते हैं। स्त्री, बालक, वृद्ध, रोगी और भोगरत अज्ञ पुरुषों को यह दीक्षा दी जाती है। सबीजदीक्षा इन अनुष्ठानों में समर्थ समयी[2], पुत्रक, साधक और आचार्य को दी जाती है। इस दीक्षा से भूत और भविष्य

---

१. 'साधक··· प्राप्नुवन्ति' नास्ति—ग.। २. प्रापयन्ति—क.। ३. विरताः'—ख.। ४. तानां—क., रताज्ञानानां—ग.। ५. 'च' नास्ति—ग.। ६. एत··· भोगाश्च' नास्ति—ख.। ७. 'इत्थं··· विनश्यन्ति' नास्ति—ख.।

1. आगम-तन्त्रशास्त्र की सभी शाखाओं में दीक्षा के विविध आयामों का वर्णन मिलता है। विस्तार के लिये तान्त्रिक टीकाग्रन्थों, निबन्धग्रन्थों और श्रद्धेयचरण श्री श्री गोपीनाथ कविराज के "तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि" इत्यादि ग्रन्थों में संगृहीत दीक्षाविषयक निबन्धों को देखा जा सकता है।
2. समयी, पुत्रक, साधक और आचार्य नामक चार प्रकार के दीक्षितों के विषय में शैव, शाक्त और वैष्णव तन्त्रों में समान रूप से विचार किया गया है। इस विषय पर हमने सात्वतसंहिता के संस्कृत उपोद्घात (पृ.५४-६३) में विस्तार से विचार किया है।

दीक्षोत्तरं पालनीया नियमाः

इत्थं त्रिविधे कर्मणि विनश्यति सति दीक्षाया उपरि मरणान्तमुच्यमानशास्त्रीयनियमैरैहिक[१]वर्तमानशरीरकारणभूतस्य कर्मणः सहकारिमलाशुद्धेर्ज्ञानानि योगाश्च तपांसि च बुद्ध्यादिसाधनैः साध्यानीत्युक्तत्वादिह न मोक्षः, किन्तु परमेश्वरप्रसादात्मिकया दीक्षयैव मोक्षः, इतरैर्नास्ति। दीक्षोत्तरकाले आचारवैकल्ये बुद्धिपूर्वस्य दोषस्य प्रायश्चित्तेन शुद्धिः स्यात्, मन्त्रद्रव्यलोपयोश्च पवित्रारोपणेन शुद्धिः। अबुद्धिपूर्वस्य नियमलोपस्यान्त्येष्टिक्रियया शुद्धिः।

विधिनिषेधौ

दीक्षोत्तरकालेऽवश्यानुष्ठेयानि कर्माणि यमनियमसम्पत्तिः, सन्ध्यावन्दनम्, शिवलिङ्गार्चनम्, अग्निकार्यम्, गुरुवचनपालनम्, यथाशक्ति[२] माहेश्वरपूजादिकं

के सभी प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते हैं। इन कर्मों का परिपाक हो जाने पर प्राप्त शरीर नष्ट हो जाता है और शरीर के अभाव में सर्वविध भोग भी नष्ट हो जाते हैं। वर्तमान शरीर के कारणीभूत कर्मों की शुद्धि (परिपाक) के लिये तो सुख, दुःख आदि का अनुभव करना ही पड़ता है। इस तरह से तीनों प्रकार के कर्मों का क्षय हो जाता है।

तीनों प्रकार के कर्मों के नष्ट हो जाने पर दीक्षा ग्रहण कर लेने के बाद मरण पर्यन्त उन नियमों का पालन करना पड़ता है, जिनकी कि स्वीकृति दीक्षा के समय उसने दी है। वर्तमान शरीर के कारणीभूत प्रारब्ध कर्मों का सहकारी कारण मलाशुद्धि को माना गया है। अतः ज्ञान, योग और तप की सहायता से अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर इस अशुद्धि को दूर करना चाहिये। इसके बिना जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। परमेश्वर का प्रसाद (अनुग्रह) होने पर सद्गुरु से प्राप्त हुई दीक्षा से ही मोक्ष मिलता है, मोक्ष अन्य किसी प्रकार से नहीं मिल सकता। दीक्षा-ग्रहण करने के बाद यदि नियमों के पालन में बुद्धिपूर्वक कोई त्रुटि हो जाती है, अर्थात् जो त्रुटि हुई, उसकी जानकारी हो जाती है, तो उसकी शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। मन्त्र और द्रव्य का लोप (अभाव) हो जाने पर उसकी शुद्धि के लिये शास्त्रों में पवित्रारोपण[1] का विधान किया गया है। जिन त्रुटियों की साधक को जानकारी नहीं

---

१. 'ऐहिक' नास्ति–ग.। २. मति–ग.।

1. पवित्रारोपण के विषय में पृ. ३९ की दूसरी टिप्पणी देखिये।

चानुष्ठेयानीति। अननुष्ठेयानि कर्माणि निर्माल्यभक्षणं च, शिवनिन्दा, [१]गुरुनिन्दा, शिवशास्त्रप्राप्ताचारनिन्दा च, देव[२]द्रव्याद्युपभोगश्च, भूतहिंसादिकं च।

मुक्तात्मनो लक्षणम्

एवं दीक्षितस्य तस्य[३] उक्तानुष्ठानवतो मुक्तस्यात्मनो लक्षणमाणवकार्ममायीय-बैन्दवरोधशक्त्याख्यपाशपञ्चकाद्[४] विमुक्तिश्च[५], परमेश्वरवत् सर्वज्ञता-सर्वकर्तृता-नित्यतृप्तता-अनादिसिद्ध[६]स्वतन्त्रता-अलुप्तशक्तिता-अनन्तशक्तिमत्ता चेति षाड्गुण्य-स्वरूपप्राप्तिश्च भवति[७]। एवंविधानां प्राप्तात्मनां परमेश्वरवत् सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यं

हो पाती, उनकी शुद्धि उसकी अन्त्येष्टि के समय की जाती है।

दीक्षा-ग्रहण के बाद अवश्य अनुष्ठेय कर्म ये हैं —[1]यम और नियम का उसे पालन करना चाहिये। सन्ध्यावन्दन, शिवलिंग का पूजन, अग्निकार्य (हवन), गुरु के वचन का पालन और यथाशक्ति शिवभक्तों का पूजन उसे प्रतिदिन करते रहना चाहिये। जिन कार्यों का परित्याग करना चाहिये, वे निषिद्ध कर्म ये हैं — निर्माल्य-भक्षण, शिवनिन्दा, गुरुनिन्दा, शैवशास्त्रों में वर्णित आचार-विचार की निन्दा, देवता के निमित्त अर्पित द्रव्य आदि का स्वयं उपयोग और प्राणियों की हिंसा। अभिप्राय यह है कि दीक्षित व्यक्ति को इन निषिद्ध कार्यों का सदा वर्जन करना चाहिये।

दीक्षा-प्राप्ति के बाद शास्त्रोक्त कर्मों का यथाविधि अनुष्ठान में निरत रहनेवाले मुक्त स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति में ये लक्षण प्रकट होते हैं — आणव, कार्म, मायीय, बैन्दव और रोधशक्ति नामक पाँचों पाशों[2] से वह मुक्त हो जाता है। परमेश्वर के समान उसमें भी [3]सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता, नित्यतृप्तता, अनादिसिद्ध स्वतन्त्रता, अलुप्तशक्तिता और

---

१. 'गुरुनिन्दा' नास्ति–ग.। २. वृत्त्या–ख.। ३. 'तस्य' नास्ति–क.ग.। ४. 'पाशपञ्चकाद्' नास्ति–ख.। ५. विमुक्तश्च–क.। ६. सिद्धि–ख., बीज–म.। ७. भवन्ति–ख.ग.।

1. पाशुपत-मत के ग्रन्थों, स्मृतियों और पुराणों में भी यम और नियम के दस-दस भेदों का वर्णन मिलता है।
2. पाँच प्रकार के पाशों अथवा मलों के विषय में पृ. ३ की पहली टिप्पणी देखिये।
3. सर्वज्ञता आदि छः अंगों अथवा गुणों का विवरण शैवागम की सभी शाखाओं तथा पुराणों में भी मिलता है। पांचरात्र आगम तथा विष्णुपुराण आदि में वर्णित षाड्गुण्य की तथा सर्वज्ञता आदि छः अंगों की तुलना स्पन्दप्रदीपिकाकार उत्पल वैष्णव ने की है। लुप्ता० उपो० (पृ.१९०-१९१) की तीसरी टिप्पणी देखिये।

नास्ति, विषयासद्भावश्च। रागद्वेषादीनामविद्य[१]मानतया च सृष्ट्यन्तरे कर्तृताया-मकरणम्। पञ्चविधकृत्येन तु परमेश्वर एव परानुग्रहं करोति।

[२]इति सर्वमतेष्विष्टा सा सिद्धान्तप्रकाशिका ।
सर्वात्मशम्भुना व्यक्ता कल्पिता शैवसंमता ।।

।। समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।।

।। [३]हरिः ॐ शुभम् ।।

अनन्तशक्तिमत्ता — ये छः माहेश्वर गुण उसमें भी अभिव्यक्त हो उठते हैं, और उसको शिवस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है, किन्तु इस तरह से अपने स्वरूप में [1]प्रतिष्ठित मुक्तात्मा में परमेश्वर के समान सृष्टि आदि पंचकृत्य करने की [2]सामर्थ्य नहीं आती। तो भी उसे सभी प्रकार के विषयों के बन्धन से मुक्ति अवश्य मिल जाती है। विषयों के अभाव में राग-द्वेष आदि दोषों के न रहने से भविष्य की सृष्टि में उसकी कोई कर्तृता नहीं रह जाती, अर्थात् आगे की सृष्टि में उसका जन्म नहीं होता। [3]पंचविध कृत्य केवल परमेश्वर में ही रहते हैं और इनकी सहायता से केवल ईश्वर ही दूसरों के ऊपर अनुग्रह कर सकता है, अर्थात् परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसीमें पंचकृत्य करने की सामर्थ्य नहीं है।

इस प्रकार सभी मतों का प्रतिपादन करनेवाली इस सिद्धान्तप्रकाशिका की [4]सर्वात्मशंभु ने शैवसिद्धान्त की पद्धति के अनुसार स्पष्ट कल्पना की है।।

इस प्रकार यह ग्रन्थ समाप्त होता है ।।

॥ हरिः ॐ शुभम् ॥

---

१. दीनां विद्यया तदा-क.। २. श्लोकोऽयं नास्ति-ग.। ३. 'हरिः ॐ शुभम्' नास्ति-ख.।

1. "स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेः" (४.३३) इस योगसूत्र में स्वरूपप्रतिष्ठा की व्याख्या देखनी चाहिये।
2. पृ. ३२ की तीसरी टिप्पणी में उद्धृत अवधूत सिद्ध के वचन का अवलोकन कीजिये।
3. शैव, वैष्णव और शाक्त-क्रमदर्शन में प्रतिपादित पंचविध कृत्यों का विवरण सात्वतसंहिता के संस्कृत उपोद्घात (पृ.३१, टि.२) में तथा लुप्ता० उपो० (पृ.१२७-१२९ तथा टि.) में देखिये। क्रमदर्शन में शिव के समान जीव की भी पंचकृत्यकारिता बताई गई है। प्रत्यभिज्ञाहृदय, दशरूपक आदि में निरूपित पंचकृत्यों की सूचना हमारे ग्रन्थ "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" (पृ.२५-२६ तथा टि.) से प्राप्त की जा सकती है।
4. ग्रन्थकार सर्वात्मशंभु का यथोपलब्ध परिचय प्रस्तावना में दिया जा रहा है।



प्रस्थानभेदः

मधुसूदनसरस्वतीकृतः

अथ सर्वेषां शास्त्राणां भगवत्येव तात्पर्यं साक्षात् परम्परया वेति समासेन तेषां प्रस्थानभेदोऽत्रोद्दिश्यते। तथाहि-ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति वेदाश्चत्वारः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति वेदाङ्गानि षट्। पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि चेति चत्वार्युपाङ्गानि। अत्रोपपुराणानामपि पुराणेऽन्तर्भावः। वैशेषिकशास्त्रस्य न्याये। वेदान्तशास्त्रस्य मीमांसायाम्। महाभारतरामायणयोः सांख्यपातञ्जल-पाशुपतवैष्णवादीनां च धर्मशास्त्रे। मिलित्वा चतुर्दश विद्याः। तथा चोक्तं याज्ञवल्क्येन —

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।। इति।

(या० स्मृ० १.३)

एता एव चतुर्भिरुपवेदैः सहिता अष्टादश विद्या भवन्ति। आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं चेति चत्वार उपवेदाः। सर्वेषां चाऽऽस्तिकानामेतावन्त्येव शास्त्रप्रस्थानानि, अन्येषामप्येकदेशिनामेतेष्वेवान्तर्भावात्।

ननु नास्तिकानामपि प्रस्थानान्तराणि सन्ति, तान्येतेष्वनन्तर्भावात् पृथग् गणयितुमुचितानि। तथाहि-शून्यवादेनैकं प्रस्थानं माध्यमिकानाम्। क्षणिक-विज्ञानमात्रवादेनान्यद्योगाचाराणाम्। ज्ञानाकारानुमेयक्षणिकबाह्यार्थवादेनापरं सौत्रान्तिकानाम्। प्रत्यक्षस्वलक्षणक्षणिकबाह्यार्थवादेनापरं वैभाषिकाणाम्। एवं सौगतानां प्रस्थानचतुष्टयम्। तथा देहात्मवादेनैकं प्रस्थानं चार्वाकाणाम्। एवं देहाद्यतिरिक्त-देहपरिमाणात्मवादेन द्वितीयं प्रस्थानं दिगम्बराणाम्। एवं मिलित्वा नास्तिकानां षट् प्रस्थानानि। तानि कस्मान्नोच्यन्ते? सत्यम्, वेदबाह्यत्वात् तेषां म्लेच्छादिप्रस्थानवत् परम्परयाऽपि पुरुषार्थानुपयोगित्वादुपेक्षणीयत्वमेव। इह तु साक्षाद्वा परम्परया वा

पुमर्थोपयोगिनां वेदोपकारकाणामेव प्रस्थानानां भेदो दर्शित:। ततो न न्यूनत्वशङ्कावकाश:। अथ संक्षेपेणैषां प्रस्थानानां स्वरूपभेदहेतुप्रयोजनभेद उच्यते बालानां व्युत्पत्तये।

तत्र धर्मब्रह्मप्रतिपादकमपौरुषेयं प्रमाणवाक्यं वेद:। स च मन्त्रब्राह्मणात्मक:। तत्र मन्त्रा अनुष्ठानकारकभूतद्रव्यदेवताप्रकाशका:। तेऽपि त्रिविधा:, ऋग्यजु:सामभेदात्। तत्र पादबद्धगायत्र्यादिच्छन्दोविशिष्टा ऋच: "अग्निमीळे पुरोहितम्" इत्याद्या:। ता एव गीतिविशिष्टा: सामानि। तदुभयविलक्षणानि यजूंषि। "अग्नीदग्नीन् विहर" इत्यादिसंबोधनरूपा निगदमन्त्रा अपि यजुरन्तर्भूता एव। तदेवं निरूपिता मन्त्रा:।

ब्राह्मणमपि त्रिविधम्—विधिरूपमर्थवादरूपं तदुभयविलक्षणरूपं च। तत्र शब्दभावना विधिरिति भाट्टा:। नियोगो विधिरिति प्राभाकरा:। इष्टसाधनता विधिरिति तार्किकादय: सर्वे। विधिरपि चतुर्विध:—उत्पत्त्यधिकारविनियोगप्रयोगभेदात्। तत्र कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधिराग्नेयोऽष्टाकपालो भवतीत्यादि:। सेतिकर्तव्यताकस्य करणस्य यागादे: फलसम्बन्धबोधको विधिरधिकारविधिर्दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेतेत्यादि:। अङ्गसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधिर्व्रीहिभिर्यजेत, समिधो यजतीत्यादि:। साङ्गप्रधानकर्मप्रयोगैक्यबोधक: पूर्वोक्तविधित्रयमेलनरूप: प्रयोगविधि:। स च श्रौत इत्येके। कल्प्य इत्यपरे। कर्मस्वरूपं च द्विविधम्—गुणकर्मार्थकर्म च। तत्र क्रतुकर्मकारकाण्याश्रित्य विहितं गुणकर्म। तदपि चतुर्विधम्—उत्पत्त्याप्तिविकृतिसंस्कृतिभेदात्। तत्र वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, यूपं तक्षतीत्यादावाधानतक्षणादिना संस्कारविशेषविशिष्टाग्नियूपादेरुत्पत्ति:। स्वाध्यायोऽध्येतव्य:, गां पयो दोग्धीत्यादावध्ययनदोहनादिना विद्यमानस्यैव स्वाध्यायपय:-प्रभृते: प्राप्ति:। सोममभिषुणोति, व्रीहीनवहन्ति, आज्यं विलापयतीत्यादावभिषवावघातविलापनै: सोमादीनां विकार:। व्रीहीन् प्रोक्षति, पत्न्यवेक्षत इत्यादौ प्रोक्षणावेक्षणादिभिर्व्रीह्याादिद्रव्याणां संस्कार:। एतच्चतुष्टयं चाङ्गमेव। तथा क्रतुकारकाण्याश्रित्य विहितमर्थकर्म च द्विविधम्—अङ्गं प्रधानं च। अन्यार्थमङ्गम्। अनन्यार्थं प्रधानम्। अङ्गमपि द्विविधम्—संनिपत्योपकारकमारादुपकारकं च। तत्र प्रधानस्वरूपनिर्वाहकं प्रथमम्। फलोपकारि द्वितीयम्। एवं संपूर्णाङ्गसहितो विधि: प्रकृति:। विकलाङ्गसंयुक्तो विधिर्विकृति:। तदुभयविलक्षणो विधिर्दर्विहोम:। एवमन्यदप्यूह्यम्। तदेवं निरूपितो विधिभाग:।

प्राशस्त्यनिन्दान्यतरलक्षणया विधिशेषभूतं वाक्यमर्थवाद:। स च त्रिविध:—गुणवादोऽनुवादो भूतार्थवादश्चेति। तत्र प्रमाणान्तरविरुद्धार्थबोधको गुणवाद:, आदित्यो

यूप इत्यादिः। प्रमाणान्तरप्राप्त्यर्थबोधकोऽनुवादः, अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादिः। प्रमाणान्तरविरोधतत्प्राप्तिरहितार्थबोधको भूतार्थवादः, इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदित्यादिः। तदुक्तम् —

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ।। इति।

तत्र त्रिविधानामप्यर्थवादानां विधिस्तुतिपरत्वे समानेऽपि भूतार्थवादानां स्वार्थेऽपि प्रामाण्यं देवताधिकरणन्यायात्। अबाधिताज्ञातज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम्। तच्चाबाधितविषयत्वाज्ज्ञातज्ञापकत्वाच्च न गुणवादानुवादयोः। भूतार्थस्य तु स्वार्थे तात्पर्यरहितस्याप्यौत्सर्गिकं प्रामाण्यं विहन्यते। तदेवं निरूपितोऽर्थवादभागः।

विध्यर्थवादोभयविलक्षणं तु वेदान्तवाक्यम्। तच्चाज्ञातज्ञापकत्वेऽप्यनुष्ठाना-प्रतिपादकत्वान्न विधिः, स्वतः पुरुषार्थपरमानन्दज्ञानात्मकब्रह्मणि स्वार्थ उपक्रमोपसंहारादिषड्विधतात्पर्यलिङ्गवत्तया स्वतः प्रमाणभूतं सर्वानपि विधीनन्तः-करणशुद्धिद्वारा स्वविशेषतामापादयदन्यशेषत्वाभावाच्च। तस्मादुभयविलक्षणमेव वेदान्तवाक्यम्। तच्च क्वचिदज्ञातज्ञापकत्वमात्रेण विधिरिति व्यपदिश्यते। क्वचिद् विधिपदरहितप्रमाणवाक्यत्वेन भूतार्थवाद इति व्यवह्रियत इति न दोषः। तदेवं निरूपितं त्रिविधं ब्राह्मणम्।

एवं च कर्मकाण्डब्रह्मकाण्डात्मको वेदो धर्मार्थकाममोक्षहेतुः। स च प्रयोगत्रयेण यज्ञनिर्वाहार्थमृग्यजुःसामभेदेन भिन्नः। तत्र हौत्रप्रयोग ऋग्वेदेन, आध्वर्यवप्रयोगो यजुर्वेदेन, औद्गात्रप्रयोगः सामवेदेन। ब्राह्मयाजमानप्रयोगौ त्वत्रैवान्तर्भूतौ। अथर्ववेदस्तु यज्ञानुपयुक्तः शान्तिकपौष्टिकाभिचारादिकर्मप्रतिपादकत्वेनात्यन्तविलक्षण एव। एवं प्रवचनभेदात् प्रतिवेदं भिन्ना भूयस्यः शाखाः। एवं च कर्मकाण्डे व्यापारभेदेऽपि सर्वासां वेदशाखानामेकरूपत्वमेव ब्रह्मकाण्डे।

इति चतुर्णां वेदानां प्रयोजनभेदेन भेद उक्तः। अथाङ्गानामुच्यते। तत्र शिक्षाया उदात्तानुदात्तस्वरितह्रस्वदीर्घप्लुतादिविशिष्टस्वरव्यञ्जनात्मकवर्णोच्चारविशेषज्ञानं प्रयोजनम्, तदभावे मन्त्राणामनर्थकत्वात्। तथा चोक्तम् —

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।। इति।
(पा०शि०५२)

तत्र सर्ववेदसाधारणी शिक्षा। अथ शीक्षां प्रवक्ष्यामीत्यादिपञ्चखण्डात्मिका पाणिनिना प्रकाशिता। प्रतिवेदशाखं च भिन्नरूपा प्रातिशाख्यसंज्ञिताऽन्यैरेव मुनिभिः प्रदर्शिता। एवं वैदिकपदसाधुत्वज्ञानेनोहापोहादिकं व्याकरणस्य प्रयोजनम्। तच्च वृद्धिरादैजित्याद्यध्यायाष्टकात्मकं महेश्वरप्रसादेन भगवता पाणिनिनैव विरचितम्। पाणिनीयसूत्रेषु कात्यायनेन मुनिना वार्त्तिकं विरचितम्। तद्वार्त्तिकस्योपरि च भगवता पतञ्जलिना महाभाष्यमारचि। तदेतत्त्रिमुनि व्याकरणं वेदाङ्गं माहेश्वरमित्याख्यायते। कौमारादिव्याकरणानि तु न वेदाङ्गानि, किन्तु लौकिकप्रयोगमात्रज्ञानार्थानीत्यवगन्तव्यम्।

एवं शिक्षाव्याकरणाभ्यां वर्णोच्चारणपदसाधुत्वे ज्ञाते वैदिकमन्त्रपदानामर्थ-ज्ञानाकाङ्क्षायां तदर्थं भगवता यास्केन "समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः" इत्यादित्रयोदशाध्यायात्मकं निरुक्तमारचितम्। तत्र च नामाख्यातनिपातोपसर्गभेदेन चतुर्विधं पदजातं निरूप्य वैदिकमन्त्रपदार्थानामर्थः प्रकाशितः। मन्त्राणां चानुष्ठेयार्थप्रका-शनद्वारेणैव करणत्वात् पदार्थज्ञानाधीनत्वाच्च वाक्यार्थज्ञानस्य मन्त्रस्थपदार्थज्ञानाय निरुक्तमवश्यमपेक्षितम्, अन्यथाऽनुष्ठानासंभवात्, "सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू" इत्यादिदुरूहाणां शब्दानां (निरु० १३.५) प्रकारान्तरेणार्थज्ञानस्यासंभवनीयत्वाच्च। एवं निघण्टवोऽपि वैदिकद्रव्यदेवतात्मकपदार्थपर्यायशब्दात्मका निरुक्तान्तर्भूता एव। तत्रापि निघण्टुसंज्ञकः पञ्चाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनैव कृतः।

एवमृङ्मन्त्राणां पादबद्धच्छन्दोविशेषविशिष्टत्वात्तदज्ञाने च निन्दाश्रवणाच्छन्दो-विशेषनिमित्तानुष्ठानविशेषविधानाच्च छन्दोज्ञानाकाङ्क्षायां तत्प्रकाशनाय "धीः श्रीः स्त्रीम्" इत्याद्यष्टाध्यायात्मिका छन्दोविचितिर्भगवता पिङ्गलेन विरचिता। तत्राप्यलौकिकमित्यन्तेनाध्यायत्रयेण गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगतीति सप्तच्छन्दांसि सावान्तरभेदानि निरूपितानि। अथ लौकिकमित्यारभ्याध्यायपञ्चकेन पुराणेतिहासादावुपयोगीनि लौकिकानि च्छन्दांसि प्रसङ्गान्निरूपितानि, व्याकरणे लौकिकपदनिरूपणवत्।

एवं वैदिककर्माङ्गदर्शादिकालज्ञानाय ज्यौतिषं भगवताऽऽदित्येन गर्गादिभिश्च प्रणीतं बहुविधमेव।

शाखान्तरीयगुणोपसंहारेण वैदिकानुष्ठानक्रमविशेषज्ञानाय कल्पसूत्राणि। तानि च प्रयोगत्रयभेदात्त्रिविधानि-तत्र हौत्रप्रयोगप्रतिपादकान्याश्वलायनशाङ्खायना-दिप्रणीतानि, आध्वर्यवप्रयोगप्रतिपादकानि बौधायनापस्तम्बकात्यायनादिप्रणीतानि, औद्गात्रप्रयोगप्रतिपादकानि लाट्यायनद्राह्यायणादिप्रणीतानि।

एवं निरूपित: षण्णामङ्गानां प्रयोजनभेद:। चतुर्णामुपाङ्गानामधुनोच्यते। तत्र सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वन्तरवंशानुचरितप्रतिपादकानि भगवता बादरायणेन कृतानि पुराणानि। तानि च ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं शैवं भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयमाग्नेयं भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहं स्कान्दं वामनं कौर्मं मात्स्यं गारुडं ब्रह्माण्डं चेत्यष्टादश।

आद्यं सनत्कुमारेण प्रोक्तं वेदविदां वरा: ।
द्वितीयं नारसिंहाख्यं तृतीयं नान्दमेव च ॥
चतुर्थं शिवधर्माख्यं दौर्वासं पञ्चमं विदु: ।
षष्ठं तु नारदीयाख्यं कापिलं सप्तमं विदु: ॥
अष्टमं मानवं प्रोक्तं ततश्चोशनसेरितम् ।
ततो ब्रह्माण्डसंज्ञं तु वारुणाख्यं तत: परम् ॥
तत: कालीपुराणाख्यं वासिष्ठं मुनिपुङ्गवा: ।
ततो वासिष्ठलैङ्गाख्यं प्रोक्तं माहेश्वरं परम् ॥
तत: साम्बपुराणाख्यं तत: सौरं महाद्भुतम् ।
पाराशरं तत: प्रोक्तं मारीचाख्यं तत: परम् ॥
भार्गवाख्यं तत: प्रोक्तं सर्वधर्मार्थसाधकम् ।

एवमुपपुराणान्यनेकप्रकाराणि द्रष्टव्यानि।

न्याय आन्वीक्षिकी पञ्चाध्यायी गौतमेन प्रणीता। प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानाख्यानां षोडशपदार्थानामुद्देशलक्षणपरीक्षाभिस्तत्त्वज्ञानं तस्या: प्रयोजनम्। एवं दशाध्यायं वैशेषिकं शास्त्रं कणादेन प्रणीतम्। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां षण्णां पदार्थानामभावसप्तमानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां व्युत्पादनं तस्य प्रयोजनम्। एतदपि न्यायपदेनोक्तम्।

एवं मीमांसाऽपि द्विविधा - कर्ममीमांसा शारीरकमीमांसा च। तत्र द्वादशाध्यायी कर्ममीमांसा "अथातो धर्मजिज्ञासा" इत्यादि "अन्वाहार्ये च दर्शनात्" इत्यन्ता भगवता जैमिनिना प्रणीता। तत्र धर्मप्रमाणम्, धर्मभेदाभेदौ, शेषशेषिभाव:, क्रत्वर्थपुरुषार्थभेदेन प्रयुक्तिविशेष:, श्रुत्यर्थपठनादिभि: क्रमभेद:, अधिकारविशेष:, सामान्यातिदेश:, विशेषातिदेश:, ऊह:, बाध:, तन्त्रम्, प्रसङ्गश्चेति क्रमेण द्वादशाध्यायानामर्था:। तथा संकर्षणकाण्डमप्यध्यायचतुष्टयात्मकं जैमिनिप्रणीतम्। तच्च देवताकाण्डसंज्ञया प्रसिद्धमप्युपासनाख्यकर्मप्रतिपादकत्वात् कर्ममीमांसान्तर्गतमेव।

तथा चतुरध्यायी शारीरकमीमांसा "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इत्यादिः, "अनावृत्तिः शब्दात्" इत्यन्ता जीवब्रह्मैकत्वसाक्षात्कारहेतुः श्रवणाख्यविचारप्रतिपादकान् न्यायानुपदर्शयन्ती भगवता बादरायणेन कृता। तत्र सर्वेषामपि वेदान्तवाक्यानां साक्षात् परम्परया वा प्रत्यगभिन्नाद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यमिति समन्वयः प्रथमाध्यायेन प्रदर्शितः। तत्र च प्रथमे पादे स्पष्टब्रह्मलिङ्गयुक्तानि वाक्यानि विचारितानि, द्वितीये त्वस्पष्टलिङ्गान्युपास्यब्रह्मविषयाणि, तृतीये पादेऽस्पष्टब्रह्मलिङ्गानि प्रायशो ज्ञेयब्रह्मविषयाणि। एवं पादत्रयेण वाक्यविचारः समापितः। चतुर्थपादे तु प्रधानविषयत्वेन संदिह्यमानान्यव्यक्ताजादिपदानि चिन्तितानि। एवं वेदान्तानामद्वये ब्रह्मणि समन्वये सिद्धे तत्र संभावितस्मृतितर्कादिप्रयुक्तैस्तर्कैर्विरोधमाशङ्क्य तत्परिहारः क्रियत इत्यविरोधो द्वितीयाध्यायेन दर्शितः। तत्राऽऽद्यपादे सांख्ययोगकाणादादिस्मृतिभिः सांख्यादिप्रयुक्तैस्तर्कैश्च विरोधो वेदान्तसमन्वयस्य परिहृतः। द्वितीये पादे सांख्यादिमतानां दुष्टत्वं प्रतिपादितम्, स्वपक्षस्थापनपरपक्षनिवारणरूपपर्वद्वयात्मकत्वाद्विचारस्य। तृतीये पादे महाभूतसृष्ट्यादिश्रुतीनां परस्परविरोधः पूर्वभागेन परिहृतः, उत्तरभागेन तु जीवविषयाणाम्। चतुर्थपादे त्विन्द्रियविषयश्रुतीनां विरोधः परिहृतः। तृतीयेऽध्याये साधननिरूपणम्। तत्र प्रथमे पादे जीवस्य परलोकगमनागमननिरूपणेन वैराग्यं निरूपितम्। द्वितीये पादे पूर्वभागेन त्वंपदार्थः शोधितः, उत्तरभागेन तत्पदार्थः। तृतीये पादे निर्गुणे ब्रह्मणि नानाशाखापठितपुनरुक्तपदोपसंहारः कृतः, प्रसङ्गाच्च सगुणनिर्गुणविद्यासु शाखान्तरीयगुणोपसंहारानुपसंहारौ निरूपितौ। चतुर्थे पादे निर्गुणब्रह्मविद्याया बहिरङ्गसाधनान्याश्रमयज्ञादीन्यन्तरङ्गसाधनानि शमदमनिदिध्यासनादीनि च निरूपितानि। चतुर्थेऽध्याये सगुणनिर्गुणविद्ययोः फलविशेषनिर्णयः कृतः। तत्र प्रथमे पादे श्रवणाद्यावृत्त्या निर्गुणं ब्रह्म साक्षात्कृत्य जीवतः पापपुण्याऽलेपलक्षणा जीवन्मुक्तिरभिहिता। द्वितीये पादे म्रियमाणस्योत्क्रान्तिप्रकारश्चिन्तितः। तृतीये पादे सगुणब्रह्मविदो मृतस्योत्तरमार्गोऽभिहितः। चतुर्थे पादे पूर्वभागेन निर्गुणब्रह्मविदो विदेहकैवल्यप्राप्तिरुक्ता, उत्तरभागेन सगुणब्रह्मविदो ब्रह्मलोकस्थितिरुक्तेति। इदमेव सर्वशास्त्राणां मूर्धन्यम्। शास्त्रान्तरं सर्वमस्यैव शेषभूतमितीदमेव मुमुक्षुभिरादरणीयं श्रीशङ्करभगवत्पादोदितप्रकारेणेति रहस्यम्।

एवं धर्मशास्त्राणि मनुयाज्ञवल्क्यविष्णुयमाङ्गिरोवसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशरगौतमशङ्खलिखितहारीतापस्तम्बोशनोव्यासकात्यायनबृहस्पतिदेवलनारदपैठीन-

सिप्रभृतिभिः कृतानि वर्णाश्रमधर्मविशेषाणां विभागेन प्रतिपादकानि। एवं व्यासकृतं महाभारतं वाल्मीकिकृतं रामायणं च धर्मशास्त्र एवान्तर्भूतं स्वयमितिहासत्वेन प्रसिद्धम्। सांख्यादीनां धर्मशास्त्रान्तर्भावेऽपीह स्वशब्देनैव निर्देशात् पृथगेव संगतिर्वाच्या।

अथ वेदचतुष्टयस्य क्रमेण चत्वार उपवेदाः। तत्राऽऽयुर्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति — सूत्रं शारीरमैन्द्रियं चिकित्सा निदानं विमानं विकल्पः सिद्धिश्चेति। ब्रह्मप्रजापत्यश्विधन्वन्तरीन्द्रभरद्वाजात्रेयाग्निवेश्यादिभिरुपदिष्टश्चरकेण संक्षिप्तः। तत्रैव सुश्रुतेन पञ्चस्थानात्मकं प्रस्थानान्तरं कृतम्। एवं वाग्भटादिनाऽपि बहुधेति न शास्त्रभेदः। कामशास्त्रमप्यायुर्वेदान्तर्गतमेव, तत्रैव सुश्रुतेन वाजीकरणाख्यकामशास्त्राभिधानात्। तत्र वात्स्यायनेन पञ्चाध्यायात्मकं कामशास्त्रं प्रणीतम्। तस्य च विषयवैराग्यमेव प्रयोजनम्, शास्त्रोद्दीपितमार्गेणापि विषयभोगे दुःखमात्रपर्यवसानात्। चिकित्साशास्त्रस्य रोगतत्साधनरोगनिवृत्तितत्साधनज्ञानं प्रयोजनम्।

एवं धनुर्वेदः पादचतुष्टयात्मको विश्वामित्रप्रणीतः। तत्र प्रथमो दीक्षापादः, द्वितीयः संग्रहपादः, तृतीयः सिद्धिपादः, चतुर्थः प्रयोगपादः। तत्र प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणं च कृतम्। अत्र धनुःशब्दश्चापे रूढोऽपि धनुर्विधायुधे प्रवर्तते। तच्चतुर्विधम्-मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं यन्त्रमुक्तम्। मुक्तं चक्रादि, अमुक्तं खड्गादि, मुक्तामुक्तं शल्यावान्तरभेदादि, यन्त्रमुक्तं शरादि। तत्र मुक्तमस्त्रमुच्यते, अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते। तदपि ब्राह्मवैष्णवपाशुपतप्राजापत्याग्नेयादिभेदादनेकविधम्। एवं साधिदैवतेषु समन्त्रकेषु चतुर्विधायुधेषु येषामधिकारः क्षत्रियकुमाराणां तदनुयायिनां च, ते सर्वे चतुर्विधाः—पदातिरथगजतुरगारूढाः। दीक्षाभिषेकशकुनमङ्गलकरणादिकं च सर्वमपि प्रथमे पादे निरूपितम्। सर्वेषां शस्त्रविशेषाणामाचार्यस्य च लक्षणपूर्वकं संग्रहणप्रकारो दर्शितो द्वितीयपादे। गुरुसंप्रदायसिद्धानां शस्त्रविशेषाणां पुनः पुनरभ्यासो मन्त्रदेवतासिद्धिकरणमपि निरूपितं तृतीयपादे। एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिः सिद्धानामस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थपादे निरूपितः। क्षत्रियाणां स्वधर्माचरणं युद्धम्। दुष्टस्य दण्डश्चोरादिभ्यः प्रजापालनं च धनुर्वेदस्य प्रयोजनम्। एवं च ब्रह्मप्रजापत्यादिक्रमेण विश्वामित्रप्रणीतं धनुर्वेदशास्त्रम्।

एवं गान्धर्ववेदो भगवता भरतेन प्रणीतः। स गीतवाद्यनृत्यभेदेन बहुविधः। देवताराधनं निर्विकल्पकसमाध्यादिसिद्धिश्च गान्धर्ववेदस्य प्रयोजनम्।

एवमर्थशास्त्रमपि बहुविधम्। नीतिशास्त्रमश्वशास्त्रं शिल्पशास्त्रं सूपशास्त्रं चतुःषष्टिकलाशास्त्रं चेति। तत्सर्वं नानामुनिभिः प्रणीतम्। अस्य च सर्वस्य लौकिकवत् प्रयोजनभेदो द्रष्टव्यः।

एवमष्टादशविद्यास्त्रयीशब्देनोक्ताः, अन्यथा न्यूनताप्रसङ्गात्। तथा सांख्यशास्त्रं भगवता कपिलेन प्रणीतम्। तच्च ''अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः'' इत्यादि षडध्यायम्। तत्र प्रथमेऽध्याये विषया निरूपिताः, द्वितीयेऽध्याये प्रधानकार्याणि, तृतीयेऽध्याये विषयेभ्यो वैराग्यम्, चतुर्थेऽध्याये विरक्तानां पिङ्गलाकुररादीनामाख्यायिकाः, पञ्चमेऽध्याये परपक्षनिर्णयः, षष्ठेऽध्याये सर्वार्थसंक्षेपः। प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानं सांख्यशास्त्रस्य प्रयोजनम्।

तथा योगशास्त्रं भगवता पतञ्जलिना प्रणीतम् ''अथ योगानुशासनम्'' इत्यादि-पादचतुष्टयात्मकम्। तत्र प्रथमे पादे चित्तवृत्तिनिरोधात्मकः समाधिरभ्यासवैराग्यरूपं च तत्साधनं निरूपितम्, द्वितीये पादे विक्षिप्तचित्तस्यापि समाधिसिद्ध्यर्थं यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय इत्यष्टाङ्गानि निरूपितानि, तृतीये पादे योगिविभूतयः, चतुर्थे पादे कैवल्यमिति। तस्य च विजातीयप्रत्ययनिरोधद्वारेण निदिध्यासनसिद्धिः प्रयोजनम्।

तथा पशुपतिमतं पाशुपतं शास्त्रं पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणाय ''अथातः पाशुपतं योगविधिं व्याख्यास्यामः'' इत्यादि पञ्चाध्यायं विरचितम्। तत्राध्यायपञ्चकेनापि कार्यरूपो जीवः पशुः, कारणं पतिरीश्वरः, योगः पशुपतौ चित्तसमाधानम्, विधिर्भस्मना त्रिषवणस्नानादिश्च निरूपितः, दुःखान्तसंज्ञो मोक्षश्च प्रयोजनम्। एत एव कार्यकारणयोगविधिदुःखान्ता इत्याख्यायन्ते।

एवं वैष्णवं नारदादिभिः कृतं पाञ्चरात्रम्। तत्र वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः पदार्था निरूपिताः। भगवान् वासुदेवः सर्वकारणं परमेश्वरः। तस्मादुत्पद्यते सङ्कर्षणाख्यो जीवः, तस्मान्मनः प्रद्युम्नः, तस्मादनिरुद्धोऽहङ्कारः। सर्वे चैते भगवतो वासुदेवस्यैवांशभूतास्तदभिन्ना एवेति भगवतो वासुदेवस्य मनोवाक्कायवृत्तिभिराराधनं कृत्वा कृतकृत्यो भवतीत्यादि च निरूपितम्।

तदेवं दर्शितः प्रस्थानभेदः। सर्वेषां च संक्षेपेण त्रिविध एव प्रस्थानभेदः। तत्राऽऽरम्भवाद एकः, परिणामवादो द्वितीयः, विवर्तवादस्तृतीयः। पार्थिवाप्यतैजसवाय-वीयाश्चतुर्विधाः परमाणवो द्व्यणुकादिक्रमेण ब्रह्माण्डपर्यन्तं जगदारभन्ते, असदेव

कार्यं कारकव्यापारादुत्पद्यत इति प्रथमस्तार्किकाणां मीमांसकानां च। सत्त्वरजस्तमोगुणात्मकं प्रधानमेव महदहङ्कारादिक्रमेण जगदाकारेण परिणमते, पूर्वमपि सूक्ष्मरूपेण सदेव कार्यं कारणव्यापारेणाभिव्यज्यत इति द्वितीयः पक्षः सांख्ययोगपातञ्जलपाशुपतानाम्। ब्रह्मणः परिणामो जगदिति वैष्णवानाम्। स्वप्रकाशपरमानन्दाद्वितीयं ब्रह्म स्वमायावशान्मिथ्यैव जगदाकारेण कल्पत इति तृतीयः पक्षो ब्रह्मवादिनाम्। सर्वेषां प्रस्थानकर्तृणां मुनीनां विवर्तवादपर्यवसानेनाद्वितीये परमेश्वर एव प्रतिपाद्ये तात्पर्यम्। नहि ते मुनयो भ्रान्ताः, सर्वज्ञत्वात् तेषाम्। किन्तु बहिर्विषयप्रवणानामापाततः पुरुषार्थे प्रवेशो न संभवतीति नास्तिक्यवारणाय तैः प्रकारभेदाः प्रदर्शिताः। तत्र तेषां तात्पर्यमबुद्ध्वा वेदविरुद्धेऽप्यर्थे तात्पर्यमुत्प्रेक्ष्यमाणास्तन्मतमेवोपादेयत्वेन गृह्णन्तो जना नानापथजुषो भवन्तीति सर्वमनवद्यम्।।

।। इति श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितः प्रस्थानभेदः ।।



विशिष्टपदानुक्रमणी



सहायक-ग्रन्थसूची

अनुभवसूत्रम् — तन्त्रसंग्रह, भा.१, पृ. १२९-१७४, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७०

अमरकोशः — सुधाव्याख्यासहितः, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अष्टप्रकरणम् — तत्त्वप्रकाश-तत्त्वसंग्रह-तत्त्वत्रयनिर्णय-रत्नत्रय-भोगकारिका-नादकारिका-मोक्षकारिका-परमोक्षनिरासकारिकाख्यप्रकरणाष्टकात्मकम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९८८

अहिर्बुध्न्यसंहिता — पांचरात्र आगम (दो भाग), अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, द्वितीय संस्करण, सन् १९६६

आगम और तन्त्रशास्त्र — प. व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

ऋग्वेदः — मूलमात्रम्, सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जि. बलसाड़)।

ऐतरेयारण्यकम् — आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, संवत् १९९८

कर्मकाण्डक्रमावली — (सोमशम्भुपद्धतिः), कश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९४७

कामसूत्रम् — जयमङ्गलाटीकासहितम्, काशी संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९८६

किरणागमः — विद्यापादः, ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, नेपोली (इटली), सन् १९७५

कूर्मपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन — डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९९४

गणकारिका — गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९६६

चन्द्रज्ञानागमः — शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

जयाख्यसंहिता — पांचरात्र आगम, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, द्वितीय संस्करण, सन् १९६७

तत्त्वप्रकाशः — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

तत्त्वसंग्रहः — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

तन्त्रयात्रा — प. व्रजवल्लभ द्विवेदी, रत्ना पब्लिकेशंस, कमच्छा, वाराणसी, सन् १९८३

तन्त्रालोकः — विवेकव्याख्यासहितः (१२ भाग), कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८-३८

तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि — म. म. गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६३

धर्मशास्त्र का इतिहास — हिन्दी अनुवाद, पंचम खण्ड, हिन्दी समिति, लखनऊ, सन् १९७५

नादकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

नामसंगीति — सटीका, सम्पा. डॉ. बनारसीलाल, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९४

निगमागम संस्कृति — प. व्रजवल्लभ द्विवेदी, वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९२

निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम् — शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९५

नेत्रतन्त्रम् — उद्योतसहितम्, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

न्यायमञ्जरी — जयन्तभट्टविरचिता, काशी संस्कृत सिरीज, वाराणसी, दो भाग, सन् १९३४

न्यू कैटलागस कैटलागरम् — (१३ भाग) मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास, सन् १९६८-१९९१

परमार्थसारः — योगराजकृतवृत्तिसहितः, कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१६

परमोक्षनिरासकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९३२

पाशुपतसूत्रं सभाष्यम् — त्रिवेन्द्रं संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४०

पौराणिक कोश — ज्ञानमण्डल मुद्रणालय, वाराणसी, सन् १९८६

प्रशस्तपादभाष्यम् — व्योमशिवकृतव्योमवतीव्याख्यासहितम्, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९२४–३१

प्रशस्तपादभाष्यम् — श्रीधरभट्टकृतन्यायकन्दलीटीकासहितम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९६३

ब्रह्मसूत्रभाष्यम् — भास्कराचार्यविरचितम्, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९१५

ब्रह्मसूत्रभाष्यम् — शङ्कराचार्यभगवत्पादविरचितम्, मूलमात्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४८

भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण।

भागवतमहापुराणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण, संवत् २०१०

भारतीय तन्त्रशास्त्र — (कार्यशाला विवरण) दुर्लभ बौद्ध-ग्रन्थ शोधयोजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९६

भोगकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

मतङ्गपारमेश्वरागमः — पादचतुष्टयात्मक, फ्रेंच शोध संस्थान, पाण्डिचेरी, दो भाग, सन् १९७७, ८२

मनुस्मृतिः — भाषानुवाद, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

महाभारतम् — गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण।

महिम्नःस्तोत्रम् — मधुसूदनीव्याख्यासहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३०

मुण्डकोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९७०

मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका — विद्यापादयोगपादौ, शिवागमसिद्धान्तपरिपालनसंघ, देवसालपुरी, तमिलनाडु, सन् १९२८

मृगेन्द्रागमः — विद्यापादयोगपादौ, कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९३०

मोक्षकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः — स्मृतिसन्दर्भ, भा. ३, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२

योगिनीहृदयम् — अमृतानन्दकृतदीपिकासहितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८

रत्नत्रयम् — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

लिङ्गधारणचन्द्रिका — शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८८

लुप्तागमसंग्रहः — सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय भाग, सन् १९८३

वसन्ततिलका — कृष्णाचार्यकृता सव्याख्या, (बौद्ध तन्त्र), केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, सन् १९९०

वामनपुराणम् — नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८३

वायवीयसंहिता — शिवपुराणस्था, पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०

विज्ञानभैरवः — भाषानुवादसहितः, सम्पा. प. व्रजवल्लभ द्विवेदी, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८४

शतरत्नसंग्रहः — उमापतिशिवाचार्यप्रणीतः, आगमानुसन्धान समिति, कलकत्ता, सन् १९४४

शिवपुराणम् — पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०

शुक्लयजुर्वेद-माध्यन्दिनसंहिता — उव्वटमहीधरभाष्यसहिता, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८७

शैवपरिभाषा — शिवाग्रयोगीन्द्रविरचिता, मैसूर विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला, मैसूर, सन् १९५०

षड्दर्शनसमुच्चयः — हरिभद्रसूरिविरचितः, गुणरत्नकृतव्याख्यासहितः, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९७०

सर्वदर्शनसंग्रहः — सायणमाधवविरचितः, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२८

सांख्यकारिका — सांख्यतत्त्वकौमुदीसहिता, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९३२

सांख्यदर्शनम् — व्याख्याचतुष्टयोपेतम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८९

सात्वतसंहिता — अलशिङ्गभट्टप्रणीतभाष्यसहिता, पांचरात्र आगम, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९८२

सिद्धान्तशिखामणिः — सव्याख्या, शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९३

सिद्धान्तसारावलिः — त्रिलोचनशिवाचार्यकृता, कन्नड़भाषानुवादसहिता, मैसूर, सन् १९३०

सिद्धान्तसारावलिः — अनन्तशम्भुरचितव्याख्यासहिता, गवर्नमेन्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी बुलेटिन, मद्रास, भा. १७-२०

सोमशम्भुपद्धतिः — कर्मकाण्डक्रमावली द्रष्टव्य।

स्वच्छन्दतन्त्रम् — क्षेमराजकृतव्याख्यासहितम्, दो भाग, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची — फ्रेंच शोध संस्थान, पाण्डिचेरी, तीन भाग, सन् १९८६, ८७, ९०

हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया — अविनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९८०

हेवज्रतन्त्रम् — योगरत्नमालाव्याख्यासहितम्, (बौद्ध तन्त्र), सम्पा. डॉ. डी. एल. स्नैलग्रोव, २ भाग, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, पुनर्मुद्रित, सन् १९८०

